ISSN 2250-2769

इतिहास दिवाकर

मूल्यांकित त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १२ अंक ४ पौष मास कलियुगाब्द ५१२१ जनवरी २०२०

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

हिमालय क्षेत्र में महर्षि पराशर	राजेश कुमार	५
गांधीवादी संदर्भों में पंथनिरपेक्षता का प्रश्न	डॉ. जयप्रकाश सिंह	१३
वात्स्यायनोक्त सौंदर्याधायक कलाओं की प्रांसगिकता	अमित शर्मा	१८
शिमला जनपदीय लोकगाथा में भारत चीन युद्ध का इतिहास	राजेन्द्र कुमार शर्मा	३०

व्यक्ति विशेष

सामाजिक विचार क्रान्ति के पुरोधा – दत्तोपन्त ठेंगड़ी	चेतराम गर्ग	३६

गांव का इतिहास

पीपलू गांव का इतिहास	डॉ. ओम दत्त सरोच	४०

ध्येय–पथ

गतिविधियां	प्यार चन्द परमार	४७

इतिहास दिवाकर

मूल्यांकित त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

सम्पादक : डॉ. राकेश कुमार शर्मा 94181 07730 rakesh.sharma9131@gmail.com

सह सम्पादक : डॉ. विवेक शर्मा 98168 23805 dr.viveksharma.skt@gmail.com

मार्गदर्शक मण्डल

डॉ. शिवाजी सिंह	गोरखपुर, (उ.प्र.)	+91–96288–72796	jns.sbs@gmail.com
श्री विजय मोहन कुमार पुरी	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–98163–20307	vmkpuri@outlook.com
प्रो. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–94181–77778	kuldeepagnihotry@gmail.com
डॉ. ईश्वर शरण विश्वकर्मा	प्रयागराज, (उ.प्र.)	+91–99354–00244	isvishwarkarma@gmail.com
प्रो. कुमार रत्नम	नई दिल्ली	+91–88396–79817	kumarratnam65@gmail.com
डॉ. सुदर्शन गुप्ता	कठुआ, जम्मू	+91–79735–61624	vnclsg@gmail.com
डॉ. रमेश चन्द शर्मा	हमीरपुर (हि.प्र.)	+91–94184–80231	dr.rcsharma7@gmail.com
श्री चेतराम गर्ग	नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)	+91–94184–85415	chetramneri@gmail.com

विषय विशेषज्ञ एवं परीक्षण मण्डल

प्रो. सुगम आनन्द	आगरा (उ.प्र.)	+91–93191–05821	sugam11@yahoo.co.in
डॉ. ओम प्रकाश शर्मा	शिमला (हि.प्र.)	+91–94184–80231	sharmaom70@gmail.com
डॉ. भाग चन्द चौहान	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–82191–41813	bcawake@gmail.com
डॉ. धर्म चन्द चौबे	अलवर, राजस्थान	+91–94611–94995	choubeydc.87@gmail.com
डॉ. नीत बिहारी लाल	रामपुर, (उ.प्र.)	+91–98376–56583	neetbehari@gmail.com
डॉ. कंवर चन्द्रदीप	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–95318–04179	kanwar.chanderdeep@gmail.com
डॉ. अंकुश भारद्वाज	शिमला (हि.प्र.)	+91–98760–35002	ankushbhardwaj333@gmail.com
डॉ. प्रियतोश शर्मा	चण्डीगढ़	+91–95015–36200	priyatosh.32@gmail.com

सम्पादन सहयोग

डॉ. ओम दत्त सरोच	ऊना, (हि.प्र.)	+91–94180–42431	omduttsaroch@gmail.com
डॉ. शिव भारद्वाज	सोलन (हि.प्र.)	+91–94188–28866	shivmrkv29@gmail.com
डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय	ऊना (हि.प्र.)	+91–97639–77002	apkmpandey@gmail.com
डॉ. मनोज कुमार	हिसार, हरियाणा	+91–94160–85062	jangra.manoj@rediffmail.com
डॉ. जयप्रकाश सिंह	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–98826–01975	jpsh.pol@gmail.com

व्यवस्थापक

प्यार चन्द परमार

+91–94180–59166

टंकण एवं सज्जा

रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, गांव व डाकघर - नेरी, जिला - हमीरपुर,

पिन - १७७००१ (हि०प्र०) दूरभाष : ०९४१८४-८५४१५

E-mail : itihasdivakar@yahoo.com **Website :** www.ssneri.com

मूल्य : प्रति अंक - १५.०० रुपये, वार्षिक - ६०.०० रुपये

सम्पादकीय

पश्चिम हिमालय क्षेत्र में ऋषि परम्परा

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान अपने शोध एवं अन्वेषण कार्य में पश्चिम हिमालय क्षेत्र पर विशेष ध्यान केन्द्रित किए हुए हैं। इसमें दो महत्त्वपूर्ण पक्ष है। पहला पक्ष तो यह है कि यह शोध संस्थान हिमालय की चोटियों के नीचे शिवालिक की उपत्यकाओं के मध्य अवस्थित है। इसलिए यहां का सही इतिहास जानना और लिखना हमारा प्रथम कर्तव्य बनता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष संकेत करता है कि विश्व की प्राचीनतम वैदिक संस्कृति व ऋषि परम्परा के स्रोत वर्तमान में भी पश्चिम हिमालय क्षेत्र में विद्यमान है। इन स्रोतों पर शोध होना विश्व समुदाय के हित में है। इस श्रृंखला में तीन महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय परिसंवाद ''लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार'' कलियुगाब्द ५१०९ (१०,११,१२ मई, २००८), दूसरा ''पश्चिम हिमालय क्षेत्र में पुरातात्त्विक अन्वेषण'' कलियुगाब्द ५१२१ (१५–१६ फरवरी, २०१९) तथा तीसरा कलियुगाब्द ५१२१ (२३–२४ नवम्बर, २०१९) को ''पश्चिम हिमालय क्षेत्र में ऋषि परम्परा'', मानवीय सभ्यता व संस्कृति के मूल सिद्धान्तों को खोजने की दिशा में मील के पत्थर सिद्ध होंगे।

इस दिशा में शोध संस्थान के वैचारिक पक्ष ने योजनाबद्ध तरीके से यह कार्य किया है। राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन करने से पूर्व 'हिमाचल प्रदेश में ऋषियों के स्थान' विषय पर व्याख्यान माला के अन्तर्गत १२ व्याख्यान हुए। यह आयोजन हमें भारतीय गोत्र परम्परा तथा समाज रचना के अनेक पक्षों को उद्धृत करने में सहायक सिद्ध होंगे।

सुरक्षित समाज ही नव सृजन की दिशा में आगे बढ़ सकता है। असुरक्षा सुरक्षा की बाट जोहता रहता है अर्थात् सुरक्षा के साधनों पर ही विचार करता रहता है। भारत रत्न डॉ. भीमराव आम्बेडकर का पाकिस्तान और भारत विभाजन पर अपना मत था कि – भारत का संविधान हमारी सुरक्षा और विकास की गांरटी हो। कोई भी मत–सम्प्रदाय के नाम पर भारतीय सुरक्षा के लिए खतरा न बने। भारत में रहने वाले सब हिन्दू हैं इसे सम्प्रदाय के चश्मे में न देख कर राष्ट्रीयता के चिन्तन से देखना होगा, इसी कड़ी में केन्द्र सरकार का नागरिक संशोधन विधेयक २०१९ राष्ट्रहित में लिया गया महत्त्वपूर्ण निर्णय है। इसके विरोध में खड़ा होना राष्ट्र की अखण्डता को खतरे में डालने जैसा है। भारतीय मुसलमानों में गलत जानकारी देकर भय का वातावरण निर्माण करना सही नहीं है।

इतिहास प्रेरणा देता है। 'गांव का इतिहास' इतिहास दिवाकर पत्रिका एक श्रृंखला प्रारम्भ कर रही है। इस अंक में जिला हमीरपुर और ऊना जिला की सीमा पर बसे पिपलू गांव ऐतिहासिक और सामाजिक सद्भाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पाठ बन्धुओं से निवेदन है कि इस श्रृंखला के परिष्कार एवं आलेख सहयोग की अपेक्षा है।

विनीत,

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

महान विचारक दत्तोपंत ठेंगड़ी जी का जन्म शताब्दी वर्ष

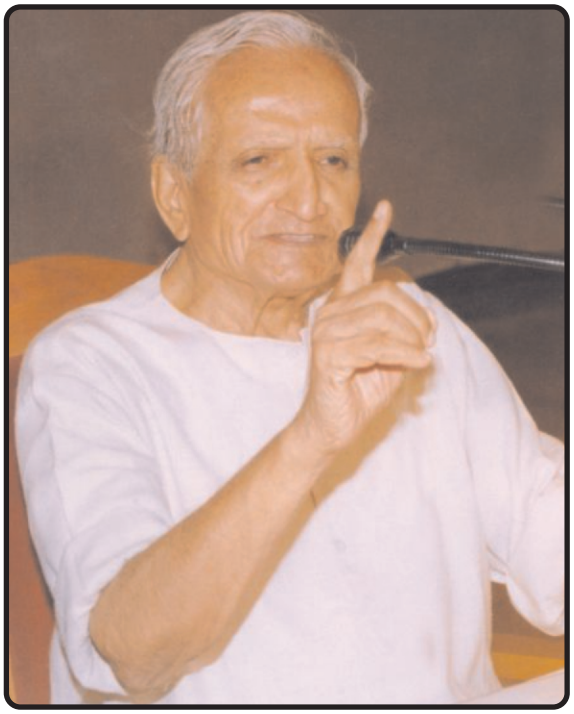

जन्म : कलियुगाब्द 5106, विक्रमी संवत् 2060 (10 नवम्बर, 1920)
देहावसान : कलियुगाब्द 5021, विक्रमी संवत् 1976 (14 अक्टूबर, 2004)

अपने महान राष्ट्र की आधारशिला का एक लघु पाषाण कण बनकर नींव में गड़े रहना ही, मैं पसंद करूंगा.....

संवीक्षण

हिमालय क्षेत्र में महर्षि पराशर

राजेश कुमार

सम्पूर्ण विश्व की संस्कृतियों में से प्राचीन वैदिक भारतीय संस्कृति ही सर्वसंस्कृति-चूड़ामणि स्वीकृत की जाती है। इस संस्कृति की इस श्रेष्ठता एवं विशिष्टता का मुख्य आधार हमारे तपोधन प्रधान एवं ज्ञान पिपासु ऋषि ही हैं जिनके कारण हमें ज्ञान-विज्ञान की यह अमूल्य धरोहर प्राप्त हुई। 'ऋषि' भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार श्रुति ग्रन्थों का दर्शन करने वाले को ही कहा जाता है। आधुनिक समय में मुनि, योगी तथा सन्त इत्यादि इसके पर्याय हैं। संस्कृति एवं समाज में ऋषियों का महत्त्व सर्वोपरि है। ऋषि ही इनके निर्माता एवं प्रवर्तक हैं। ऋषि ही भारतवर्ष की सुदीर्घ ज्ञान विज्ञान परम्परा के स्रोत एवं केन्द्र हैं। इसके अतिरिक्त अनेक विद्याओं का ज्ञान जो शताब्दियों से भारतीयों के वर्चस्व में निरन्तर वृद्धि कर रहा है, उसका कारण भी ऋषियों का दिव्य ज्ञान ही है। **'ऋषिः दर्शनात्'** तथा **'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'** इत्यादि वाक्यों से ज्ञात होता है कि जिन्होंनें तप तथा ज्ञान के माध्यम से ईश्वरीय ज्ञान 'वेद' का साक्षात्कार किया, वे ही ऋषि है।

'ऋषि' शब्द की परिभाषा

निरुक्त में आचार्य यास्क ने 'ऋषि' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए, औपमन्यव आचार्य के मत को उद्धृत करके कहा है कि 'ऋषि' शब्द 'दृश्' धातु से निष्पन्न है, क्योंकि ऋषियों ने स्तोभों (मन्त्रों) का दर्शन किया है – 'ऋषिः दर्शनात्', स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः।[१] निरुक्त में इसी स्थान पर एक अन्य उद्धरण के अनुसार 'ऋषि' शब्द गत्यर्थक 'ऋष्' धातु से निष्पन्न माना गया है।[२] इस उद्धरण में यह कहा गया है कि ''तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्,[३] तद् ऋषीणां ऋषित्वम्'' इति विज्ञायते अर्थात् ''तपस्या में रत समाधिस्थ इन ऋषियों ने आत्मसात् किया और उन्हें इन वेद मन्त्रों की प्राप्ति हुई। निरुक्त के अन्य प्रमुख व्याख्याकार आचार्य दुर्ग ने भी 'ऋषि' शब्द को 'ऋष्' दर्शने धातु से निष्पन्न मानते हुए, यह अभिप्राय प्रकट किया है कि 'जिन विशिष्ट व्यक्तियों ने मन्त्रों का विविध अवसरों पर विविध कार्यों में प्रयोग करके उनसे उत्पन्न होने वाले परिणामों का साक्षात्कार किया, वे 'ऋषि' हैं। आचार्य यास्क का यह कथन ''साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुःतेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः''[४] भी आचार्य दुर्ग के अभिप्राय से सहमत प्रतीत होता है। कतिपय विद्वानों ने 'ऋष् गतौ' धातु से 'इण्' प्रत्यय लगाकर ऋषि शब्द निष्पन्न माना है।[५] 'ऋष् गतौ' इति धातुः। 'सर्वधातुभ्य इन् इगुपधात् कित्' इस प्रकार ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ही 'ऋषि' है। 'दृशिर् प्रेक्षणे' धातु से भी ऋषि शब्द को उत्पन्न मानते हैं जिसका अर्थ होता है 'द्रष्टा'[६]। 'ऋषति प्राप्नोति सर्वान् मन्त्रान् ज्ञानेन पश्यति संसारं पारं वा इति' इसके अनुसार 'ऋषि'

शब्द का अर्थ है, वैदिक मन्त्रद्रष्टा। महत्त्वपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध शब्दकोश वाचस्पत्यम् के अनुसार 'ऋषि' शब्द की परिभाषा इस प्रकार है – 'ऋषति ज्ञानेन संसारं पारं ऋषी गतौ कि। ज्ञानेन संसारपारगते वसिष्ठादौ, शास्त्रकृदाचार्य्ये, वेदे, किरणे च तस्य व्युत्पत्तिर्यथा। ऋषी हिंसा गतौ धातुविद्यासत्यतपः श्रुतिः। एष सन्निचयो यस्मात् ब्राह्मणश्चततस्त्वृषिः। ऋषन्ति परमां यस्मात् परमर्षिस्तत स्मृतः।[७]

मत्स्यपुराण में 'ऋषि' शब्द का अर्थ बताते हुए पुराणकार ने कहा है –

गत्यर्थादृशतेर्धातोर्नामनिर्वृतिकारणम्।[८]

यस्मादेव स्वयम्भूतस्माच्च ऋषिता मता।।

इस श्लोक के अनुसार 'ऋषि' शब्द के चार अर्थ हैं – गति, श्रुति, सत्य तथा तप। मत्स्यपुराण का यही श्लोक वायुपुराण में किञ्चित पाठ-भेद के साथ प्राप्त होता है।[९] महाभारत के एक अन्य स्थल पर 'ऋषि' शब्द को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि – 'ऋषि' वेदशास्त्रों के स्वाध्याय में निरत रहते हैं, ज्ञानोपार्जन करते हैं एवं धर्मपालन में पूर्ण निष्ठा रखते हैं –

स्वाध्यायनिष्ठान् हि ऋषीन् ज्ञाननिष्ठांस्तथापरान् ।

बुद्धयेथाः सततं चापि धर्मनिष्ठान् धनंजय।।[१०]

उपरोक्त समस्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि ऋषि हमारे अस्तित्व का आधार हैं। ऋषियों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं – १. जन्मजात ऋषि, २. तपः संजात ऋषि। प्रथम श्रेणी के ऋषियों की सृष्टि साक्षात ब्रह्म के द्वारा होती हैं – मरीचि इत्यादि १० ऋषि इसके उदाहरण हैं। द्वितीय श्रेणी के ऋषि अपने तप के माध्यम से ऋषित्व को प्राप्त करते हैं जिनमें अगस्त्य, वसिष्ठ, पराशर इत्यादि प्रमुख हैं।

हिमालय क्षेत्र में ऋषि

भारतीय समाज में व्यक्ति के आत्मिक उत्थान के लिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन चार आश्रमों की परिकल्पना की गई। ऋषियों ने गृहस्थाश्रम के उपरान्त वानप्रस्थ आश्रम में विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए वनों में जाकर गहन तप व अध्ययन करते हुए दिव्य ज्ञान का संकलन जनसामान्य के लिए किया। अनादिकाल से ऋषि-मुनियों ने तपश्चर्या हेतु एकान्त एवं पवित्र स्थान का ही चयन किया और नगाधिराज हिमालय से अधिक श्रेष्ठ, पवित्र व शान्तियुक्त कोई भी ऐसा स्थान न था जो इन तपस्वी ऋषियों की तपोस्थली बन सके। इसी कारण अधिकांश ऋषियों ने हिमालय के आंचल में ही अपना आश्रम स्थापित करके हिमालय को अपनी तपोस्थली बनाया। क्योंकि हिमालय में शान्त एवं एकाग्रचित रहकर ऋषि परमाशक्ति का ध्यान करते हुए अपनी तप साधना कर सकते हैं।

हिमालय क्षेत्र के ऋषियों में महर्षि पराशर अन्यतम हैं। महर्षि पराशर को एक मन्त्रद्रष्टा शास्त्र एवं धर्मशास्त्रकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है।[११] ये महर्षि वसिष्ठ के पौत्र तथा पराशर गोत्रप्रवर्तक हैं। महाभारत में महर्षि पराशर को वेदनिधि कहा गया है। महर्षि का उल्लेख वेदों,

पौराणिक कथाओं, धर्मशास्त्रों एवं भाष्यों में उपलब्ध होता है।

महर्षि पराशर का जीवन वृतान्त – 'पराश्रृणाति पापानीति पराशरः' इस व्युत्पति के अनुसार जो पापों का नाश करे वह पराशर है। सायण ने अपने भाष्य में लिखा है – 'परागत्य श्रृणाति हिनस्ति शत्रून् इति पराशरः', अर्थात् जो शत्रुओं को परास्त करे वह पराशर है। निरुक्तकार ने पराशर शब्द की व्युत्पति करते हुए कहा है कि जो राक्षसों का विनाश करने में समर्थ हो वह पराशर है। इन्द्र का अपर नाम भी पराशर है। विद्वानों के अनुसार जिसे दर्शन मात्र से ही समस्त पापों का नाश हो जाए वह पराशर है।[९२] महर्षि पराशर, महर्षि शक्ति तथा अदृश्यन्ती के पुत्र, वसिष्ठ के पौत्र तथा व्यास के पिता थे।[९३] महाभारत में अनेकत्र महर्षि पराशर के वंश का वर्णन किया है। महर्षि पराशर के जन्म का विस्तृत वर्णन महाभारत के आदिपर्व में वर्णित है। इनके वंश-वर्णन में इन्हे महर्षि शक्ति तथा अदृश्यन्ती का पुत्र बताया गया है।[९४] महाभारत के शान्तिपर्व में महर्षि पराशर की वंशावली का वर्णन करते हुए वैशम्पायन कहते हैं–

यं मानसं वै प्रवदन्ति विप्राः, पितामहस्योत्तमबुद्धियुक्तम्।
वसिष्ठमग्र्यं च तपोनिधानं, यस्यातिसूर्य व्यतिरिच्यते भाः।।
तस्यान्वये चापि ततो महर्षिः, पराशरो नाम महाप्रभावः।
पिता स ते वेदनिधिर्वरिष्ठो, महातपा वै तपसो निवासः।।[९५]

वसिष्ठ ने स्वयं अपने पौत्र पराशर का जातकर्म संस्कार किया। जब राक्षस ने शक्ति मुनि सहित वसिष्ठ के सौ पुत्रों का भक्षण कर लिया तब मुनि आत्महत्या के लिए उद्यत हो गए। अदृश्यन्ती ने वसिष्ठ को गर्भवती होने की बात कही तो मुनि ने आत्महत्या का विचार त्याग दिया। बालक ने गर्भ में आकर मरने की इच्छा वाले वसिष्ठ मुनि को जीवित रहने के लिए उत्साहित किया था जिसके कारण वे पराशर नाम से प्रसिद्ध हुए।

परासुः स यस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनि।
गर्भस्तेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः।।[९६]

माता अदृश्यन्ती स्वयं पराशर को वसिष्ठ का पौत्र होने की बात कहती है जब पराशर वसिष्ठ को तात शब्द से सम्बोधित करते हैं। इसी समय माता पराशर को उनके वास्तविक पिता के विषय में बताते हुए कहती है कि –

मा तात तात तातेति ब्रूह्येनं पितरं पितुः।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे।।[९७]

जब पराशर को यह ज्ञात हुआ कि राक्षसों ने उसके पिता का भक्षण कर लिया है तो वह समस्त लोकों के विनाश के लिए आतुर हो गए किन्तु वसिष्ठ के वचनों से उनका क्रोध शान्त हो गया।[९८] किन्तु राक्षसों के प्रति अपने क्रोध के कारण पराशर ने राक्षस सत्र का अनुष्ठान किया।[९९] यद्यपि वसिष्ठ उस राक्षस सत्र को भी रोकना चाहते थे किन्तु उन्होंने पहले ही समस्त सृष्टि के विनाश

से पराशर को विमुख किया था। अतः पराशर की क्रोध शान्ति हेतु उन्होने राक्षस सत्र का अनुष्ठान करने वाले अपने पौत्र को चाहते हुए भी नहीं रोका। उनके इस राक्षस सत्र में समस्त राक्षसों का विनाश होते देख महर्षि अत्रि स्वयं उपस्थित हुए तथा उनके क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महाक्रतु ने भी पराशर से निवेदन किया एवं उनके पिता की मृत्यु का वास्तविक कारण शाप बताया जिसके परिणामस्वरूप ऋषि का क्रोध शान्त हुआ तथा उन्होने राक्षस सत्र समाप्त किया।

एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमतां।
तदा समापयमास सत्र शाक्तो महामुनिः।।[२०]

व्यास जनक के रूप में महर्षि पराशर : महर्षि पराशर के पुत्र व्यास विश्व प्रख्यात हैं। महाभारत के आदिपर्व में व्यास के जन्म की विस्तृत कथा प्राप्त होती है। शिव के वरदान से ही पराशर को पुत्र के रूप में व्यास की प्राप्ति हुई थी।[२१] उपरिचर नामक राजा की पुत्री सत्यवती तथा पराशर के संयोग से व्यास का जन्म हुआ था। उपरिचर राजा का स्खलित वीर्य संयोगवश मछली के उदर में जा पहुंचा जिससे मत्स्य नामक पुत्र तथा सत्यवती (मत्स्यगन्धा) नामक कन्या उत्पन्न हुई।[२२] सत्यवती पहले मत्स्यगन्धा नाम से विख्यात थी तथा वह यमुना में नाव चलाती थी। उसके शरीर से मत्स्य की गन्ध आने के करण उसका नाम मत्स्यगन्धा रखा गया था। एक दिन तीर्थयात्रा के उद्देश्य से विचरण करने वाले महर्षि पराशर ने उसे देखा तथा उनके हृदय में उसको प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हो गई।[२३] महर्षि के प्रणय अनुरोध पर सत्यवती ने दोनो तटों पर ऋषियों के खडे होने की बात कही। सत्यवती ने कहा कि ऐसी दशा में हमारा संगम संभव नहीं है। तब महर्षि ने अपने तपोबल से सर्वत्र कुहरा व्याप्त कर दिया।

संगमं मम कल्याणि कुरुश्वेत्यभ्यभाषत।
सब्रबीत पश्य भगवन् पारावारे स्थितानृषीन्।।
आवयोर्दृष्टयोरेभिः कथं तु स्यात समागमः।
एवं तयोस्तो भगवान नीहारमसृजत प्रभुः।।[२४]

सत्यवती के द्वारा प्रार्थना करने पर महर्षि ने उन्हे संसर्ग के पश्चात् भी कन्या रहने का तथा उसके शरीर से उत्तम सुगन्ध निस्सृत होने का वरदान दिया।[२५] वरदान के कारण एक योजन तक उसकी सुगन्ध का अनुभव होने के कारण उसका नाम योजनगन्धा हो गया।[२६] सत्यवती एवं पराशर के संयोग से महर्षि व्यास तत्काल उत्पन्न हो गए –

पराशरेण संयुक्ता सद्यो गर्भं सुषाव सा।
जज्ञे च यमुनाद्वीपे पाराशर्यः स वीर्यवान।।[२७]

विविध शास्त्र ज्ञाता के रूप में महर्षि पराशर : महर्षि पराशर का अनेक स्थानों पर शास्त्र ज्ञाता के रूप में वर्णन किया गया है। इनके इन्हीं ज्ञान के कारण नारद ने इन्द्र की सभा में महर्षि पराशर की

उपस्थिति का वर्णन किया है।[२८] पराशर धर्म का विधिपूर्वक अनुष्ठान करने की प्रेरणा देते हैं। विश्वावसु ऋषि ने भी पराशर को आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान से युक्त बताया है।[२९] राजा जनक तथा पराशर का धर्म विषयक संवाद महर्षि के धर्मशास्त्रज्ञ होने का प्रमाण है।[३०] कर्मफल की अनिवार्यता, पुण्यकर्म से लाभ, धर्मोपार्जित धन की श्रेष्ठता, अतिथि सत्कार का महत्त्व, पांच प्रकार के ऋणों (देवता, अतिथि, भरण-पोषण के योग्य कुटुम्बीजनों का ऋण ,पितृ-ऋण, आत्मऋण) से मुक्ति की विधि, भगवत्स्तवन की महिमा, सदाचार, गुरूजनों की सेवा, सत्संग की महिमा, चारों वर्णों के धर्म, स्वधर्म के अनुसार कर्त्तव्यपालन का आदेश, तपोबल की श्रेष्ठता, विषयासक्त मनुष्य का पतन, वर्णोत्पत्ति का रहस्य, सत्यकर्म की श्रेष्ठता, विविध प्रकार के कर्मों का वर्णन इत्यादि विषय महर्षि पराशरोक्त पराशरगीता में संकलित है।[३१] उपरोक्त वर्णनों से महर्षि का ब्रह्म, धर्म, दर्शन विषयक गूढ़ ज्ञान स्पष्टतया परिलक्षित होता है। आचार्य पराशर ने कलियुग में दान को ही महत्त्वपूर्ण माना है। जब सभी ऋषियों ने महर्षि व्यास से कलियुग में धर्म के विषय में पूछा तो व्यास ने उनसे कहा कि मेरे पिता पराशर ही इस विषय में मार्गदर्शन दे सकते हैं।[३२] महर्षि पराशर ने उनको जो उपदेश दिया वह पराशरस्मृति के रूप में संग्रहीत है। महर्षि पराशर ने कलियुग में दान को ही धर्म माना है तथा इसी कारण कलियुग में पराशरस्मृति की महत्ता भी कही गई है।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमित्युचुर्दानमेकं कलौ युगे।।
कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पराशरः स्मृतः।।[३३]

महाभारत में भी महर्षि पराशर ने दान को कभी न नष्ट होने वाला कहा है। महाभारत के अनुशासन पर्व में देवता कहते हैं कि महर्षि पराशर के कथनानुसार जो व्यक्ति अन्न का दान करता है उस पर कभी दुर्गम संकट नहीं पडता है।[३४] महर्षि पराशर से सम्बन्धित अनेक धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जिनमें पराशरस्मृति तथा बृहत्पराशरहोराशास्त्र अन्यतम हैं।

हिमालय में महर्षि पराशर

उत्तराखण्ड में महर्षि पराशर : हिमालयी क्षेत्र महर्षि पराशर की तपोस्थली रहा है। उत्तराखण्ड में स्थित बदरिकाश्रम तथा हिमाचल का मण्डी क्षेत्र महर्षि पराशर की तपोस्थली रहा है। बदरिकाश्रम में नर-नारायण ने भी तपस्या की थी।[३५] बदरिकाश्रम की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए महर्षि व्यास महाभारत में कहते हैं –

तस्यातिय़ासः पुण्यां विशालां बदरीमनु।
आश्रमः ख्यायते पुण्यस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।
उष्णतोयवहा गंगा शीतलतोयवहा पुरा।
सुवर्णसिक्ताराजन् विशालां बदरामनु।।[३६]

एषा शिवजला पुण्या याति सौम्य महानदी।
बदरीप्रभवा राजन् देवर्षिगणसेविता।।[३७]

कलियुग से सम्बन्धित धर्मविषयक प्रश्न पूछने के लिए भी महर्षि व्यास अन्य ऋषियों के साथ बदरिकाश्रम में गए थे।[३८]

हिमाचल प्रदेश में महर्षि पराशर : हिमाचल प्रदेश महर्षि पराशर की प्रमुख तपोस्थली रहा है। प्रदेश में महर्षि को देवता का स्थान प्राप्त है। हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिले में स्थित ऋषि पराशर को समर्पित पराशर-मन्दिर है। कहा जाता है कि एकदा भ्रमण करते हुए महर्षि इस स्थान पर पहुँचे तथा हिमाचल के इस एकान्त एवं शान्त स्थान पर तप करने का निर्णय लिया। यह मन्दिर मण्डी से लगभग ५० कि.मी. की दूरी पर है। काष्ठ निर्मित यह मन्दिर २७३० मीटर की उँचाई पर स्थित है। पैगोड़ा शैली में निर्मित ऋषि पराशर का यह आकर्षक तीन मंजिला भव्य मन्दिर पराशर झील के किनारे स्थित है। काष्ठ निर्मित इस मन्दिर के भीतरी भाग एवं बाह्य तथा आन्तरिक स्तम्भों पर विविध जन्तुओं एवं देवी देवताओं की आकृतियाँ निर्मित हैं। इतिहासकारों का मानना है कि इसका निर्माण 13वीं-14वीं शताब्दी में मण्डी के राजा बाणसेन ने करवाया था। यहाँ पर ऋषि पराशर ने तपस्या की थी जिसके फलस्वरूप इन्हे देव रूप में पूजा जाने लगा। मन्दिर के अन्दर महर्षि पराशर की भव्य प्रतिमा है। मन्दिर में ही एक चतुर्भुजा देवी की प्रतिमा भी विद्यमान है। विद्वानों का मानना है कि यह गंगा देवी की प्रतिमा है। जनश्रुति के अनुसार यहाँ स्थित मन्दिर का निर्माण केवल एक वृक्ष से एक छोटे बालक द्वारा किया गया है। यह भी कहा जाता है कि यह पूरा मन्दिर एकल देवदार के पेड़ से बनाया गया है जिसके निर्माण में लगभग १२ साल लग गए थे।

इस मन्दिर के किनारे पर पराशर झील स्थित है। ऐसी मान्यता है कि इस झील का निर्माण ऋषि पराशर के दर्शनों के लिए आए पाण्डवों में से मध्यम भीम के द्वारा इस स्थान पर कोहनी रखने के कारण हुआ था। महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर जब समस्त पाण्डव महर्षि के दर्शनों के लिए आए तब भीम ने इस स्थान पर अपनी कोहनी रखी जिसके फलस्वरूप यहाँ झील निर्मित हो गई। इसके अतिरिक्त इस पर एक अन्य कथा भी उपलब्ध होती है जिसके अनुसार जब मुनि ने यहाँ तपस्या करना प्रारम्भ किया तो इस स्थान पर जल का अभाव था। महर्षि ने जल प्राप्त करने के लिए भूमि पर गदा/दण्ड के प्रहार से इस स्थान पर झील का निर्माण किया। इस झील की परिधि ३०० मीटर है तथा इसकी गहराई आज भी अज्ञात है। इस झील में एक तैरता हुआ भूमि खण्ड (टापू) भी स्थित है जो झील के जल में भ्रमण करता रहता है। स्थानीय भाषा में इस इस भूमि खण्ड (टापू) को जल में टहलने (भ्रमण) के कारण 'टहला' भी कहते हैं। भूमि खण्ड का जल में तैरना विज्ञान के लिए भी आश्चर्य का विषय है। स्थानीय लोगों का कहना है कि पहले यह भूमि खण्ड प्रतिदिन सूर्य की गति के अनुसार पूर्व से पश्चिम में जाता था। कुछ विद्वान इस भूमि खण्ड को पृथ्वी के परिमाण का द्योतक तथा कुछ इसकी गति को पाप एवं पुण्य से जोड़ते हैं। इस झील का जल पवित्र तथा रोग निवारक है। विभिन्न प्रकार के

रोगों के निवारण के लिए लोग इस जल में स्नान करते हैं।

पराशर मन्दिर के निकट ही बान्दी नामक गाँव स्थित है जहाँ पर महर्षि पराशर का भण्डार है। यहाँ पर ऋषि की अष्टधातु निर्मित पांच मुहरें है। इसके अतिरिक्त लोगों का मानना है कि समीप स्थित कमान्द नामक गाँव में महर्षि ने तप किया था जिसके कारण इसे उनका आदि आश्रम भी माना जाता है। हर साल जून के माह में पराशर मन्दिर में सरनौहाली या सरनाहुली का मेला लगता है। इस मेले में लगभग ३० स्थानीय देवता भी भाग लेते हैं तथा पराशर झील की परिक्रमा करते हैं। यह मेला देवसम्मेलन के लिए भी प्रसिद्ध है। इस मेले में असंख्य श्रद्धालु भाग लेते हैं तथा महर्षि पराशर उनकी मनोकामनाओं की पूर्ति करते हैं। मेले के अवसर पर लोग झील के पुण्यजल में स्नान करते हैं। चर्म रोगों के निवारण के लिए भी लोग इस पुण्य जल में स्नान करते हैं। मण्डी के शिवरात्रि मेले में भी महर्षि पराशर का आगमन होता है। हिमाचल में महर्षि पराशर की महिमा से सम्बन्धित अनेक लोकगीत भी प्रचलित हैं जो महर्षि की महानता के स्पष्ट द्योतक हैं। हिमाचल प्रदेश की संस्कृति एवं समाज पर महर्षि पराशर के धर्म सम्बन्धी उपदेशों का गहरा प्रभाव है। अतः यह स्पष्ट है कि महर्षि हिमाचल के ऋषियों में अन्यतम हैं।

सन्दर्भ :

१. निरुक्त २.११

२. वही २.११

३. तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक २, अनुवाक् ९

४. निरुक्त १.२०

५. उणादिसूत्र ४/११९, संस्कृत हिन्दी कोश-वामन शिवराम आप्टे

६. शब्दकल्पद्रुम कोश

७. वाचस्पत्यम कोश

८. मत्स्यपुराण अध्याय १२०

९. ऋषि हिंसा गतौ धातुर्विद्यासत्यतपःश्रुतिः,
एष सन्निचयो यस्मात् ब्रह्मणश्च ततस्त्वृषिः।
विवृत्तिसमकालन्तु बुद्ध्या व्यक्ति ऋषिस्त्वयम्,
ऋषन्ते परमां यस्मात् परमर्षिस्ततः स्मृतः।। वायु पुराण ४१.२

१०. महाभारत १२/२६/५

११. पराशरं वेदनिधि नमस्ये। वही॰ १३/१५०/१०

१२. पराशातयिता यतुनाम इति पराशरः। परा परितः यातूनां रक्षसाम शातयिता विनाशकः।।
निरुक्त ६/३०

१३. महाभारत १/६०/०२,१/९५/४९, पराशरस्मृति १/८

१४. आश्रमस्था ततः पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत।
शक्तेः कुलकरं राजन् द्वितीयमिव शक्तिनम्।। महाभारत १/१७७/०१
१५. वही. १२/३४९/४९-५०
१६. वही. १/१७७/०३
१७. वही. १/१७७/०३
१८. वही.१/१७७/०९-१०
१९. ईजे च स महातेजाः सर्ववेदविदां परः।
ऋषी राक्षससत्रेण शाक्तेयोऽथ पराशरः।। वही॰१/१७७/०९-१०
२०. वही॰१/१८०/२१
२१. वही॰१३/१८/४५-५०
२२. वही॰०१/६३/४९-६८
२३. वही॰०१/६३/६७-७०
२४. वही॰०१/६३/७२-७३
२५. वही॰०१/६३/७८-८०
२६. वही॰०१/६३/८१-८२
२७. वही॰०१/६३/८४
२८. वही॰०२/०७/१०
२९. वही॰१२/३१८/५९
३०. वही॰१२/२९०/३-२६
३१. वही॰१२/ अध्याय २९०-२९८
३२. पराशरस्मृति १/१-४
३३. वही॰ १/२२-२३
३४. सद्यो ददाति यश्चान्नं सदैकाग्रमना नरः।
न स दुर्गाण्यवाप्नोतीत्येवमाह पराशरः।। महाभारत १३/६६/६०
३५. वही॰ ३/४०/१, ३/११५/१९, ३/१४१/२३
३६. वही॰ ३/९०/२५-२६
३७. वही॰ ३/१४२/४
३८. पराशरस्मृति १/५

शोधार्थी, संस्कृत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

गांधीवादी संदर्भों में पंथनिरपेक्षता का प्रश्न
(राजनीति और धर्म की अपृथक्करणीयता के विशेष संदर्भ में)

डा. जयप्रकाश सिंह

भारतीय मनीषा इस तथ्य को लेकर बहुत स्पष्ट रही है कि धर्मसत्ता से ही अन्य सत्ताएं निःसृत होती हैं और धर्म पर किसी का एकाधिकार नहीं है, उसका अंश अलग-अलग रुपों और भूमिकाओं में सभी में व्याप्त है। इसी कारण भारत में सत्ताओं की समानांतर रेखाएं नहीं रही हैं। धर्म ने व्यक्तियों को अलग-अलग भूमिकाएं प्रदान कीं और इसके साथ ही कुछ निश्चित सत्ताएं और सीमाएं भी यह यूरोपीय दृष्टि के ठीक उलट है। वहां राज्यसत्ता और पुरोहित सत्ता आपस में टकराती रहीं। पुरोहित सत्ता (चर्च) लौकिक सत्ता को भी अपने अधीन बताने-जताने की कोशिश करती रही और राजसत्ता उसे स्वर्ग सम्बंधी मामलों तक ही सीमित रखने की दलील देती रही।

पापमोचक पत्रों[१] (Paper of Indulgences) जैसी संकल्पनाएं इसी दौर में आई। इसके जरिए चर्च द्वारा यह जताने की कोशिश की गई कि राजा सहित सभी व्यक्ति स्वर्ग जाने के लिए उसकी कृपा पर निर्भर हैं। पोप राजसत्ता पर भी अपने अधिकार की घोषणा करता था और इसी से पोप-शासित राज्यों (Papal States)[२] की संकल्पना अस्तित्व में आई। संघर्ष लम्बे अरसे तक चला और बाद में पंथनिरपेक्षता के रूप में दोनों के लिए एक सीमा-रेखा खींच दी गई। राजनीति और पंथ का घालमेल न करने का मूल्य और तर्क भी इसी घटनाक्रम से उपजा।

महात्मा गांधी राजनीति की भूमिका, महत्त्व और स्थान के बारे में भारतीय परम्परा के अनुसार ही समझ रखते थे। वह धर्मविहीन राजनीति को एक शव मानते थे, जो कोई भी जीवंत और सृजनात्मक कार्य में असमर्थ होती है। राजनीति में धर्म के निवेश को वह सबसे अधिक सृजनात्मक कार्य मानते थे क्योंकि उनकी यह स्पष्ट मान्यता थी कि राजनीति सर्व-सामान्य के जीवन से सीधे जुड़ी होती है और सबसे अधिक प्रभावित भी करती है। उन्होंने बिना झिझक के कहा कि मेरी राजनीति और अन्य सारी गतिविधियां मेरे धर्म से निकली हैं।[३] इसलिए उन्होंने पंथनिरपेक्षता के उस यूरोपीय तर्क को पूरी तरह से खारिज कर दिया था, जो राजनैतिक और धर्म के बीच मजबूत विभाजक रेखा खींचता है। वह अपनी आत्मकथा की भूमिका में कहते हैं, सच के प्रति उनका अनुराग उन्हें राजनीति में खींच लाया है और उनकी राजनीतिक क्षेत्र में उन्हें जो शक्ति उपलब्ध हुई है, वह आध्यात्मिकता से निकली हुई है। मैं बिना रत्तीभर संकोच किए और पूरी विनम्रता से यह कहना चाहूंगा कि जो यह कहते हैं कि राजनीति का पंथ से कुछ भी लेना-देना नहीं है, उन्हें पंथ का मतलब ही पता नहीं है।[४]

वह इस बात को बार-बार दोहराते हैं कि राजनीति को जीवन की अनन्यतम गहराई से अलग नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा कि मेरे लिए धर्म से रहित कोई राजनीति नहीं हो सकती... मेरे लिए धर्मरहित राजनीति मौत का जंजाल है, जिसमें आत्मा भी दम घोंट देती है।[५] मैं तब तक एक धार्मिक जीवन नहीं जी सकता, जब तक पूरी मानवता के साथ स्वयं का तादात्म्य न स्थापित कर लूं और मैं ऐसा तब तक नहीं कर सकता जब तक राजनीति में मेरी सहभागिता न हो। पूरी मानवता की गतिविधियां अब अविभाजित सम्पूर्णता में निहित हैं। मैं गतिविधियों से परे किसी धर्म को नहीं जानता।[६]

इस संदर्भ में गांधी की सबसे बड़ी मान्यता यह थी कि राजनीतिक शक्ति आंतरिक शुचिता और संकल्प की शुद्धता पर निर्भर करती है। षड्यंत्रों और दांव-पेचों का पर्याय माने जाने वाली राजनीति को आंतरिक शुचिता से जोड़ने का कार्य गांधी ने केवल सैद्धांतिक स्तर पर नहीं किया बल्कि उन्होंने इस सूत्र को अपने जीवन में भी धारण किया। उनके लिए सत्य, प्रेम और नैतिकता ही ईश्वर थे।[७] उन्होंने इस कथन को बाद में और संघनित करते हुए कहा कि सत्य ही ईश्वर है[८] और उनका मानना था कि ये गुण ईश्वर जैसे शक्तिशाली भी होते हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि राजनीति एक ऐसा दैनंदिन कर्म है, जिसको न्यायपूर्ण और उचित ढंग से नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। जिस अनुपात में आंतरिक शुद्धता बढ़ती है, उसी अनुपात में लोगों पर हमारा प्रभाव भी बढ़ता जाता है और इसके लिए अपनी तरफ से किसी अन्य प्रयास की जरूरत नहीं होती। उनका मानना था कि धर्म रहित व्यक्ति अपने मूल से कटा होता है[९] और मूल से कटा हुआ व्यक्ति दूसरों को प्रभावित करने में अक्षम होता है।

भारतीय राजनीति के जिस कालखण्ड को हम गांधी-युग कहते हैं वह नैतिक बल से राजनीति को संचालित करने के प्रयासों का दौर है। इस प्रयास में कितनी सफलता-असफलता मिली, इस पर मतभेद हो सकता है लेकिन यह एक अकाट्य सत्य है कि इस कालावधि में राजनीति पर नैतिक मूल्यों की छाप और प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

यदि राजनीति की भारतीय परम्परा और धर्म के साथ उसके अंतर्सम्बंधों को खंगालने का प्रयास करें तो गांधी त्यागपूर्ण नैतिक राजनीति के आग्रह को आसानी से समझा जा सकता है। गांधी के चिंतन पर महाभारत के शांतिपर्व के प्रभाव को स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। भीष्म शांतिपर्व में राजधर्म को जिस तरह से परिभाषित करते हैं उसका सार-संक्षेप यही है कि राजधर्म एक ऐसी पवित्र धुरी है, जिस पर धर्म की अन्य धुरियां आश्रित हैं। यदि राजधर्म का निर्वहन ठीक ढंग से नहीं होता तो अन्य धर्मों का सम्यक निर्वहन करना असम्भव हो जाता है। भीष्म का दूसरा आग्रह यह है कि राज्यकर्म का संचालन सजग और अलिप्त भाव से ही करना चाहिए। राजसत्ता का संचालन भोगभाव से नहीं योगभाव से किया जाना चाहिए।

एम.आर.जयकर तो पश्चिमी लोगों को सम्बोधित करते हुए यह स्पष्ट कहते भी हैं कि गांधी

की राजनीति पर नेतृत्व की पुरानी भारतीय परम्परा की स्पष्ट छाप दिखती है। यह यूरोप की समझ से पूरी तरह भिन्न है। हम भारतीय आसानी से इसे समझ सकते हैं।

गांधी अपनी राजनीतिक सक्रियता और स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका के कारणों की तरफ खुले मन से और स्पष्ट रूप से संकेत करते हैं। उनकी मान्यता है कि मुक्ति की साधना एकांत में नहीं हो सकती। लोगों के बीच रहकर और लोगों के लिए काम करने पर ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। वह कहते हैं कि राजनीति में आने की विवशता इसलिए महसूस करता हूं क्योंकि मैंने यह पाया कि राजनीति को स्पर्श किए बगैर समाज-सेवा के कार्य को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।[१०]

गांधी कहते हैं कि मैं इसी शरीर से मोक्ष प्राप्त करने के लिए अधीर हूं। मेरी राष्ट्रसेवा, मेरी आत्मा पर पड़े बंधनों को तोड़ने की दिशा में किया गया प्रयास ही है। इस तरह मेरी राष्ट्रसेवा को विशुद्ध रूप से स्वार्थ भी माना जा सकता है। मैं चाहूं तो ऐसा कर सकता हूं। लेकिन गुफा में रहकर भी कोई हवाई किले बना सकता है, जबकि जनक की तरह राजमहल में रहने वालों को इस तरह हवाई किले बनाने की जरूरत नहीं पड़ती।.....मुझे अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए किसी गुफा में शरण लेने की आवश्यकता नहीं है। ....मेरे लिए मुक्ति का मार्ग राष्ट्र की सेवा के लिए किए गए कठिन श्रम से ही निकलेगा।

गांधी की राजनीति और धर्म की अपृथक्करणीयता की मान्यता राजधर्म की संकल्पना से निकली है। राजधर्म, धर्म की वृहद संकल्पना का अंश भर है। ऐसे में गांधीवादी परिप्रेक्ष्य में निषेधात्मक पंथनिरपेक्षता के लिए कोई स्थान बचता नहीं। विशेषाधिकारवादी वर्तमान पंथनिरपेक्षता को तो एक तरह से गांधीवादी चिंतन के एकदम विपरीत ही माना जा सकता है। अधिक से अधिक सर्वधर्म सम्भाव में विश्वास रखने वाली पंथनिरपेक्षता को ही गांधी के धर्म-प्रेरित राजनीति में स्वीकार किया जा सकता है। वे कहते हैं कि राजनीति का सम्बंध देश से है। धार्मिक प्रवृत्ति रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक प्रमुख विषय राष्ट्र होना ही चाहिए।[११]

प्रश्न यह है कि क्या राजधर्म की परम्परा से निकले गांधी के चिंतन के लिए वर्तमान राजनैतिक प्रक्रिया में कोई स्थान बचा है? राजधर्म और पंथनिरपेक्षता की प्रचलित अवधारणा विपरीत धुरियां हैं। दुर्भाग्य यह है कि राजधर्म को समझे बगैर ही कुछ शक्तियां राजधर्म के निर्वहन का उपदेश देती हैं, मानो राजधर्म विकृत पंथनिरपेक्षता का सुरक्षाकवच हो। वर्तमान राजनीतिक प्रक्रिया में राजधर्म की भावना का निवेश समय की आवश्यकता है। राजधर्म का निवेश, वृहत्तर धर्म को भी स्थापित करेगा और इसी के साथ सभ्यता-संस्कृति-राष्ट्र भी अपने गौरव के साथ पुनःप्रतिष्ठित होंगे। बड़ी बात यह है कि राजनीति में राजधर्म के निवेश की नजदीकी खिड़की गांधी ही हैं।

यहां पर एक प्रश्न भी खड़ा होता है कि क्या राजनीति में शांति और अहिंसा का गांधीवादी आग्रह सदैव चल सकता है। यह प्रश्न गांधी तक सीमित नहीं रह जाता क्योंकि भक्ति आंदोलन

सदियों से भारत जब भी धर्म और शांति के चौराहे पर खड़ा होता है तो वह खुद को असमंजस की स्थिति में पाता है। निर्णायक क्षणों में असमंजस की स्थिति में फंसने की यह मानसिकता भारत में गहराई तक धंसी हुई है और इसके कारण भारत और भारतीयता को बहुत नुकसान उठाना पड़ा है। बदलावों के दौर से गुजर रहे इस देश में अब भी यह मानसिकता यथावत बनी हुई है। अब भी यह देश धर्म और शांति के चौराहों पर खुद को असहज और असहाय महसूस करता है। इसलिए इस प्रश्न का उत्तर ढूंढना आवश्यक हो जाता है। पुलवामा के बाद उभरा परिदृश्य इस बात का हालिया उदाहरण है। पाकिस्तान के खिलाफ एयर स्ट्राइक करने के बाद जब दोनों देशों के बीच तनाव चरम सीमा पर पहुंच गया था तब मीडिया और नागरिक समूहों के एक धड़े ने एकाएक शांति का राग अलापना शुरू कर दिया। शांति का राग बुरा नहीं है लेकिन हर राग का एक प्रहर होता है, एक समय होता है। बेसमय का राग बेसुरा तो होता ही है साथ ही नुकसानदायक भी है। जब सत्य और धर्म का प्रश्न मुंह बाएं खड़ा हो तो भारतीय परंपरा शांति-अशांति की कसौटी को गौण मानती रही है। शांति की परिधि में धर्म हमेशा चक्कर लगाए, यह जरूरी नहीं है। धर्म पथ पर शांति-अशांति के बजाय देश-काल व पात्र का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इस पथ पर कुछ भी अस्पृश्य नहीं है। देशबोध और कालबोध के हिसाब से प्राथमिकता-सूची में यह ऊपर से नीचे होता रहता है।

भारतीय परंपरा में निर्णय लेने की मुख्य कसौटी धर्म और न्याय है, शांति और समझौते नहीं। इसी धर्म को सबसे बड़ा रक्षक भी बताया गया है।[१२] धर्म यदि शांतिपूर्ण तरीके से स्थापित होता है तो बहुत अच्छा लेकिन यदि धर्म के मार्ग में शांति बाधा बनकर खड़ी हो जाए तो धर्म उस बाधा को ध्वस्त कर आगे बढ़े, यह परंपरा का आदेश है।

रामायण और महाभारत का यही संदेश है। राम और कृष्ण की यही सीख है। इस बात को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि धर्म के बजाय यदि शांति को तरजीह दी गई होती तो रामायण और महाभारत कभी नहीं घटित होते। गीता का तो संपूर्ण उपदेश ही प्राथमिकता सूची में धर्मपथ को शांतिपथ से ऊपर रखने के लिए दिया गया है। इस परंपरा के आलोक में और ऊहापोह की वर्तमान भारतीय मानसिकता के संदर्भो में गांधी का आकलन की यथार्थ पृष्ठभूमि तैयार होती है।

गांधी के मानसिक स्तर पर अपने जीवन का बड़ा हिस्सा धर्मपथ और शांतिपथ के इस चौराहे पर उनके निर्णयों और आदर्शों की ऊहापोह की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। वह सत्यकाम भी है और शांतिकाम भी है। उनके चिंतन की मूल समस्या यह है कि वह सत्य को शांति की परिधि में ही स्वीकार करने को तैयार है। मानवीय प्रवृत्तियां और दुनियावी गतिविधियां तो यही बताती हैं कि सच को शांति के दायरे में नहीं समेटा जा सकता। गांधी जब यह कहते हैं कि 'सत्य ही ईश्वर है' तो वह इस बात को स्वीकार कर रहे होते हैं कि निर्णयों की अंतिम कसौटी सत्य है लेकिन जब वह यह कहते हैं कि अहिंसा एक मात्र रास्ता है तो वह सच की परिधि निर्धारित कर देते हैं। सच और शांति के अन्तर्सम्बन्धों की यह जटिलता, गांधी चिंतन को विशेषता देती है और कुछ हद तक

कमजोर भी बना देती है। गांधी ने भारतीय परंपरा में बदलाव करते हुए शांति को सत्य से ऊपर रखने की कोशिश की। हांलाकि वह सत्याग्रह करते दिखते हैं लेकिन केन्द्र में अहिंसाग्रह होता है।

मूल्यों और आदर्शों को हम परंपरानुसार यथाक्रम से फिर व्यवस्थित कर सकें तो यह गांधीवादी चिंतन का परिष्कार होगा और परंपरा का पोषण भी। आज की परिस्थितियों में यह देश और समाज दोनों के लिए अधिक आवश्यक कर्म बन गया है। हां, इस कार्य को गांधीवाद के सतही विरोध के तौर पर नहीं किया जाना चाहिए और न ही लिया जाना चाहिए क्योंकि यह स्व-परिष्कार है और गांधी स्व-परिष्कार की सतत् प्रक्रिया के सबसे बड़े प्रतीक है।

भारतीय राजनैतिक चिंतन परम्परा, धर्म और राजनीति को अपृथक मानती है। इसके साथ ही वह धर्म और न्याय को स्थापित करने के लिए हिंसा को अछूत नहीं मानती। इस परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर देखें तो गांधी एक तरफ पंथनिरपेक्षता को पूरी तरह से खारिज करते हैं तो दूसरी तरफ अपने धर्म को शांति की परिधि में बांधकर रखना चाहते हैं। उनमें भारतीय राजनीतिक परम्परा का एक अंश विद्यमान है लेकिन दूसरा हिस्सा गायब है। वर्तमान परिदृश्य में उसे सम्पूर्ण बनाकर गांधी को वास्तविक श्रद्धांजलि दी जा सकती है।

संदर्भ :

1. निश्चित राशि लेकर बुरे कर्मों या पाप कर्मों से मुक्ति प्रदान करने वाले पत्र। यह पत्र चर्च के पदाधिकारी जारी करते थे। इसके कारण ही मार्टिन लूथर किंग को प्रोटेस्टेंट आंदोलन चलाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

2 . पोप के नियंत्रण में शासित होने वाले राज्य। इटली प्रायद्वीप के बहुत सारे राज्य पोप के सीधे नियंत्रण में आते थे। वेटिकन सिटी को बनाने की अवधारणा पैपल स्टेट्स से ही आई है।

3. M.K.Gandhi, Harijan, 2.3.1934
4. M.K.Gandhi, The story of My Experiment with the Truth, Navjivan Publishing House, 1994, Ahmedabad, p 383
5. M.K.Gandhi, Young India3.4.1924
6. M.K.Gandhi, Harijan, 24.12.1938
7. M.K.Gandhi, Young India, 12.3.25
8. M.K.Gandhi, Young India, 31.12.1931
9. M.K.Gandhi, Harijan, 2.7.1946
10. M.K.Gandhi, Harijan, 6.10.1946
11. Young India, 18.6.1925

1 2. मनुस्मृति, धर्मो रक्षति रक्षितः (8-15)

सहायक प्राध्यापक, जनसंचार विभाग
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

वात्स्यायनोक्त सौंदर्याधायक कलाओं की प्रासंगिकता

अमित शर्मा

सृष्टि में उपलब्ध सम्पूर्ण ज्ञानराशि का मूलाधार वेद हैं। वैदिकसाहित्य अपने ज्ञानालोक से सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करता है। विविधविषयक वैदिक मन्त्रों में ऋषियों ने गहन तप से प्राप्त ज्ञान को लोककल्याण के निमित्त संरक्षित किया। वेदोत्तरकाल में भी ऋषियों और महाकवियों ने अपनी विविध कलाओं व कौशलों का परिचय अपनी कृतियों में दिया।

'कला' एक ऐसा शब्द जिसको सुनते ही हमारे मानस पटल पर अनेक प्रतिमान उभरते हैं। संस्कृत भाषा की कल् धातु से कच् और टाप्[1] प्रत्ययों के योग से निष्पन्न ये शब्द अपने अन्दर अनेक अर्थों को लिए हुए है। संख्या, प्रकटन, गणना, दर्शन, अवलोकन, संकलन, चिन्तन, मनन, दान, निर्माण, कौशल, कलाकृति, आनन्दोत्पादक इत्यादि अनेक अर्थों में इस शब्द का प्रयोग मिलता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में कलाओं का स्थान श्रेष्ठ रहा है। सृष्टि को परमब्रह्म की कला मानने वाली भारतीय परम्परा अध्यात्मप्रधान है। यह सृष्टि की प्रत्येक क्रिया को उस परमब्रह्म परमेश्वर की ही उपासना मानती है। महर्षि वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ कामसूत्र में कलाओं के विषय में विशद वर्णन किया है। उन्होने अपने ग्रन्थ में कलाओं की संख्या चौंसठ स्वीकार की है।[2] इन समस्त कलाओं का उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही मानी गई है। शिव की उपलब्धि के लिए सत्य की सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति का नाम कला है। परमानन्द की उपलब्धि को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानने वाली भारतीय संस्कृति चौंसठ कलाओं के माध्यम से दैनन्दिन जीवन में भी आनन्द की उपासना करती रही है। अपूर्ण को पूर्ण और अशिव को शिव करने का कार्य कला के द्वारा किया जाता है।

मानव प्रकृति से ही सौंदर्यप्रेमी रहा है। सौंदर्य सबको आकर्षित करने वाला होता है। हमारी इन्द्रियां जिन विषयों का दर्शन करने में उद्यत होती हैं वे सौंदर्य के अन्तर्गत आते हैं। प्राचीनकाल से ही सौंदर्य के प्रति जागरूक भारतीय समाज विविध प्रकार के पुष्पों, पत्रों, मणियों आदि से अलंकृत होता था। सम्प्रति यह कला न केवल भारत अपितु संपूर्ण विश्व में प्रचलित है। वात्स्यायनोक्त चौंसठ कलाओं में स्त्रियों पुरूषों के सौंदर्य से सम्बद्ध अनेक कलाओं का वर्णन मिलता है।

पुष्पमाला एवं पुष्पाभूषण

मनुष्य ने जब तक स्वर्ण रजत आदि धातुओं का प्रयोग करना नहीं सीखा था तब तक आभूषण के रूप में पुष्प एवं पुष्पमालाएं ही प्रयुक्त होती थीं। संस्कृत वाङ्मय में कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिसमें मालाओं का वर्णन न हो। ये मालाएं पुष्पों की, मोतियों की अथवा सोना चान्दी आदि धातुओं की ही क्यों न हों, मालाओं ने अपना स्थान सर्वत्र स्थापित किया है। अथर्ववेद में अश्विनी

कुमार कमल की माला धारण करने वाले बताए गए हैं।

''अश्विना वर्च आ धत्तां पुश्करस्रजा।''[३]

इन्द्र को भी मालाधारी कहा गया है।

''इन्द्रमा वह सुस्रजम्''[४]

एक स्थान पर यह भी प्रार्थना की गई है कि संतानहीनता, बालमृत्यु, रोदन, पाप इत्यादि उसी प्रकार शत्रुओं के ऊपर चले जाएं जिस प्रकार वृक्ष से उत्पन्न पुष्पों की माला किसी को पहना दी जाती है।

''अप्रजास्त्वं मार्तवस्माद् रोदमघमारवयम्।
वृक्षाद्विस्रजं कृत्वाप्रिये प्रतिमुञ्च तत्।''[५]

वाल्मीकि रामायण में भी सीता स्वयंवर के अवसर पर श्रीराम द्वारा तोड़ा गया शिवधनुष सुगन्धित पुष्पमालाओं से सुसज्जित था।

धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम्।[६]

श्री राम के राज्याभिषेक के शुभावसर पर अयोध्यावासियों द्वारा राजमार्ग पुष्पमालाओं से सुसज्जित किया गया था।

कृतपुष्पोपहारच.....।
राजमार्गः कृतः श्रीमान् पौरैः रामाभिशेचने।।"[७]

इस प्रकार अनेक तरह की सजावट के कार्यों में पुष्पों का प्रयोग किया जाता था जो कि वर्तमान काल में भी प्रचलित है। इसके अतिरिक्त पुष्पों का प्रयोग मांगलिक कार्यों में भी होता है। परन्तु पुष्पों का सर्वाधिक प्रचलित प्रयोग आभूषण के रूप में किया जाता है। आभूषणों में भी प्रमुख है– माला। कलाकार की कोमल कल्पना के साथ क्रमशः एक के बाद एक सूत्र में पिरोए गए पुष्पों से रचित होने के कारण इसकी संज्ञा 'माला' है जो परवर्ती युग में पंक्ति या परम्परा का वाचक बन गया। दृष्टि को हर लेने के कारण 'हार' और शिल्पी की मनोरम कल्पना और सौंदर्यचेतना का सर्जन होने के कारण 'स्रज' कहा गया। महर्षि वाल्मीकि अयोध्या की समृद्धि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि अयोध्या में कोई भी ऐसा नागरिक नहीं था जो गन्धमाला अथवा पुष्पमाला न पहनता हो।

''नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान्।''[८]

भारतीय समाज में मालाओं का विशिष्ट स्थान रहा है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक भी मालाओं का प्रयोग द्रष्टव्य है। मालाओं के अनेक प्रकार साहित्य में वर्णित हैं। इनमें से सिर पर धारण की जाने वाली मालाएं, स्कन्ध से लटकने वाली मालाएं, कण्ठ में धारण की जाने वाली मालाएं प्रमुख हैं।

क) सिर पर धारण की जाने वाली माला

अमरकोश के अनुसार ऐसी मालाओं की सामान्य संज्ञा माल्य, माला और स्रज् है। केश

मध्य में धारण की गई विशिष्ट माला की सामान्य संज्ञा गर्भक, शिखा से लटकती हुई माला की प्रभ्रष्टक और सामने की ओर रखी गई माला की ललामक संज्ञा है।

माल्यं माला स्रजौ मूर्धिन केशमध्ये तु गर्भकः।

प्रभ्रष्टकं शिखलम्बि पुरोन्यस्तं ललामकम्।।[९]

ये मालाएं एक ही प्रकार के पुष्पों से अथवा भिन्न वर्ण और गन्ध वाले पुष्पों की मिश्रित संयोजना से बनाई जाती थीं। महाकवि कालिदास के अनुसार वर्षा ऋतु में महिलाएं कदम्ब, केसर और केतकी की सुन्दर आयोजना से रचित मालाओं को सिर पर धारण करती थीं।

माला कदम्बनवकेसरकेतकीभिरायोजिताः शिरसि बिभ्रति योशितोऽद्य।[१०]

सिर पर धारण किए जाने वाले माल्याभूषण 'शेखरक' और 'आपीड़' कहे जाते थे। इनकी सुरुचिपूर्ण योजना एक स्वतन्त्र कला मानी जाती थी। स्त्रियाँ अपनी सुदीर्घ वेणी को भी पुष्पमाल्य से अलंकृत करती थीं। ऐसी मालाओं को वेणीस्रक् कहा जाता था। आधुनिक समय में इसी को गजरा के नाम से जाना जाता है। आखेट या वनगमन के समय में केशों को वनमाला से बाँध लिया जाता था।

ग्रथित मौलिरसौ वनमालया[११]

ख) कंधे से लटकती माला

महाकवि कालिदास ने प्रायः पुरूषों के प्रसंग में इन मालाओं का वर्णन किया है। कुटज और अर्जुन के पुष्पों से बनी कन्धे से लटकती हुई माला को धारण करने वाले राजा अग्निवर्ण का वर्णन रघुवंश महाकाव्य में किया गया है।[१२]

ग) कण्ठ में धारण की जाने वाली माला

ये मालाएं अनेक प्रकार की होती थीं।

१. वक्षस्थल को सुषोभित करने वाली माला

अमरकोश के अनुसार कण्ठ से वक्ष तक सीधी लटकती माला की संज्ञा 'प्रालम्ब' है।[१३] ग्रीष्म ऋतु में स्त्रियों के चन्दन चर्चित वक्षस्थल पर लटकते हुए तुशार गौर पुष्पहार कालिदास का प्रिय वर्णनीय विषय है।

पयोधराश्चन्दनपंकचर्चितास्तुशारगौरार्पितहारशेखराः।[१४]

अङ्नाओं के वक्षस्थल पर अर्पित हारयष्टि सुप्त मन्मथ को जगा देती थी।[१५]

रघुवंश महाकाव्य में भी अज के वक्षस्थल पर सुशोभित स्वयंवरमाला का वर्णन महाकवि कालिदास ने किया है जो इन्दुमती के बाहुपाश के समान सुशोभित हो रही है।

तया स्रजा मंगलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थललम्बया सः।

अमंस्त कण्ठार्पितबाहुपाशां विदर्भराजावर्जा वरेण्यः।।[१६]

ये मालाएं घुटनों और पैरों तक लम्बी भी होती थीं। विविध मांगलिक अवसरों पर इन मालाओं का प्रयोग होता है। राज्याभिषेक के अवसर पर अभिषिच्यमान राजा श्वेतपुष्पमालाएं ही

धारण करते थे।[१७]

प्राचीन भारत में नागरिक के घर में अतिथियों अथवा मित्रों का स्वागत सत्कार पुष्पमालाओं से ही होता था।[१८] माल्योपहार सौहार्द और प्रेम को तो अभिव्यक्त करता ही था, साथ ही साथ यह विशिष्ट सत्कार और सम्मान का सूचक भी था। विभिन्न उत्सवों व सम्मानसमारोहों में भी सम्माननीयों का सम्मान पुष्पमालाओं से किया जाना द्रष्ट्व्य है। वस्तुतः माला 'माति मानहेतुर्भवति'[१९] इस निरूक्ति के अनुसार मान का ही प्रतीक थी। माला श्री और सौभाग्य का प्रतीक समझी जाती है। अतः 'मां शोभां लाति' इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह एक अन्वर्थ संज्ञा थी। आचार्य चरक के अनुसार गन्धमाल्य का सेवन सौभाग्य, आयुष्य, पुष्टि और बल प्रदान करने वाला, चित्त को प्रसन्न करने वाला तथा काम्य होता है।

वृष्यं सौभाग्यमायुष्यं काम्यं पुष्टिबलप्रदम्।
सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नं गन्धमाल्यनिशेवनम्।।[२०]

अतः नित्य स्नान के उपरांत स्त्री-पुरूष अंगराग आदि के साथ ही पुष्पमाल्य भी धारण करते थे।

अपि स्नातो जामातेति। सुमनोवर्णकमानयामि[२१]

इस प्रकार दैनन्दिन जीवन में माला के बहुविध प्रयोग ने 'माल्यग्रथन' को एक शिल्पकला के रूप में विकसित किया। स्त्री-पुरूष सभी इस कला में नैपुण्य प्राप्त करते थे। वस्तुतः यह कला जीवन के सौंदर्य की कला है। यह प्रेम की एक ऐसी मूक भाषा है जिसे मानव ने कोमल पुष्पों के बहुवर्णी वैविध्य से मुखर किया है। आज के समय में भी हम देखते हैं कि पुष्पमालाओं का जीवन के विभिन्न पक्षों में प्रचुर प्रयोग है। ईश्वरोपासना क्रम में भी पुष्पमालाओं का प्रयोग किया जाता है। अतः वात्स्यायनोक्त यह कला वर्तमान में एक विकसित एवं परिष्कृत रूप में प्रचलित है।

२. तिलक एवं पत्रावली

वात्स्यायनोक्त चौंसठ कलाओं के अन्तर्गत 'विशेषकच्छेद्य' की गणना भी हुई है। जिसका अर्थ है कस्तूरी, अगरु, चन्दनादि से तिलकरचना व तिलकरचना के लिए छेद्य (खाके) बनाने की कला। भ्रूरचना, केशरचना आदि के समान ही विशेषक की रचना भी अनादि काल से स्त्री-शृंगार का प्रमुख अंग रही है। इस कला को विशेषकच्छेद्य या पत्रच्छेद्य भी कहा गया है। कामसूत्र की यशोधर टीका के अनुसार –

विशेषकस्तिलको यो ललाटे दीयते, तस्य भूर्जादिपत्रस्य अनेकप्रकारं छेदनमेव छेद्यं पत्रच्छेद्यमिति वक्तव्यम्।[२२]

अर्थात् ललाट पर किया जाने वाला तिलक विशेषक है। भूर्जादि पत्रों के इसके छेद्य (खाके) निर्माण करने के कारण ही इसे पत्रछेद्य कहा जाता है। बौद्धग्रन्थ ललितविस्तर की शिल्प-सूची में भी 'पत्रच्छेद्य' का उल्लेख है। अनेक कलाओं की भान्ति यह कला भी मनुष्य ने प्रकृति से ही सीखी। जब

उसने गौरवर्ण चन्द्रमा के मुख पर कृष्णवर्ण कलंक देखा तो 'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति' का अनुभव कर अपनी प्रिया के गौर मुख पर कृष्ण विशेषक की रचना कर डाली। विशेषक का सामान्य अर्थ है – तिलक। अमरकोश के अनुसार विशेषक के तीन पर्याय हैं – तमालपत्र, तिलक एवं चित्रक। तिलकरचना के दो नाम हैं – पत्रलेखा एवं पत्रङ्गुलि।[२३] साहित्य में पत्रलता, पत्रप्रपंच, पत्रविशेषक, पत्रभक्ति, भक्तिचित्र, भक्तिच्छेद, विच्छिति आदि पद भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनका विवेचन इस प्रकार है –

विशेषक

ललाट पर लगाए जाने वाले तिलक की सामान्य संज्ञा विशेषक है। टीकाकार यशोधर के अनुसार विलासिनियों को अत्यधिक प्रिय होने के कारण विशेष आदर की अभिव्यक्ति के लिए इसे विशेषक नाम दिया गया है।

विशेषग्रहणमादरार्थं विलासिनीनामतिप्रियत्वात्।[२४]

महाकवि माघ के अनुसार वधू के उज्ज्वल मुख पर स्निग्ध अंजन के समान श्याम कान्ति वाले सुन्दर वृत्ताकार विशेषक की शोभा अद्वितीय है। मुखशोभा को विशिष्ट बना देने के कारण ही इसे विशेषक कहते हैं।

स्निग्धांजनश्यामरुचिः सुवृत्तो वध्वा।
विशेषको वा विशेशष यस्याः श्रियम्।।[२५]

विशेषक के कई प्रकार हैं।

क) पत्रविशेषक

पत्ते के समान कटावदार आकृति में होने के कारण इसे पत्र विशेषक कहा जाता है। शचीपति इन्द्र की पत्र विशेषकों से अंकित भुजाओं पर पराक्रमी रघु ने बाणों के चिह्न बना दिए थे।

भुजे शचीपत्रविशेषांकिते स्वनामचिह्नैर्निचखान सायकम्।[२६]

केवल देवाङ्नाएं ही नहीं किन्नराङ्नाएं भी अपने मुख को पत्रविशेषकों से अलंकृत करती हैं।

स्वेदोद्गमः किम्पुरूशाङ्गनानां चक्रे पदं पत्रविशेषकेशु।[२७]

महाकवि कालिदास के अनुसार वसन्त ऋतु में खिले हुए कुरबक पुष्प के रूप में मधुमास मानों उपवन लक्ष्मी के मुख पर अभिनव पत्रविशेषक की रचना करता है।

ख) तिलक

तिल अथवा तिल पुष्प की मंजरी के समान आकार में रचे जाने के कारण विशेषक की एक संज्ञा तिलक भी है। आदिकवि वाल्मीकि के अनुसार स्त्रीमुख की शोभा तिलक से ही है।

विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरदिक प्रकाशते।[२८]

महाकवि कालिदास को वसन्त ऋतु में खिले हुए तिलक पुष्प वसन्तश्री के मुख पर सुशोभित

तिलक के समान प्रतीत होते हैं।[२९] तिलक रचना दोनों भौंहों के बीच में की जाती है, अतः भ्रूभंग के कारण तिलक रचना भिन्न हो जाती है। कालिदास इस 'भिन्नतिलक' के सौंदर्य से अभिभूत हैं। क्रोधवा किए गए भ्रूभंग से मालविका का कुछ टूटा हुआ तिलक अग्निमित्र की दृष्टि को बाँध लेता है[३०] तो प्रिय समागम से पुँछा हुआ पार्वती का तिलक भगवान शिव के नेत्रों को।

रागवान्प्रेक्ष्य भिन्नतिलकं प्रियामुखम्।[३१]

ग) तमालपत्र

स्निग्ध, कृष्णवर्ण तमालपत्र को विभिन्न आकृतियों में काट कर तिलक रचना किए जाने के कारण विशेषक की एक संज्ञा तमालपत्र भी है। श्रीहर्ष के अनुसार ब्रह्मा ने सरस्वती के दोनों भौंहों की रचना प्रणव के दोनों दलों से तथा भालस्थित तमालपत्र की रचना प्रणव के बिन्दु से की थी।

तद्बिन्दुना भालतमालपत्रम्।[३२]

घ) पत्रभंग

भंग शब्द का अर्थ है विच्छेद। अतः अनेक विच्छिन्न रेखाओं में पत्राकृति की रचना को पत्रभंग कहा गया है। भंग का अर्थ तरंग भी है। अतः लहरों के समान ऊँची नीची रेखाओं में पत्राकृति रचना भी पत्रभंग है। बाणभट्ट ने पत्रभंग की रचना अत्यन्त जटिल, घुमावदार रेखाओं में वर्णित की है।

आभङ्गिनीभिः ..... पत्रभङ्गकुटिलाभिः मञ्जरीभिः जटिलीकृत।[३३]

वक्षस्थल पर पत्रभंग की रचना इतनी प्रचलित थी कि शालभंजिकाओं के पयोधरों पर भी अन्तःपुर की कन्याएं पुष्परस से पत्रभंग की रचना करतीं थीं।

निपुणिके! लिख मणिशालभंजिकास्तनेषु कुंकुमरसपत्रभंगान्।[३४]

ङ) विशेषक-भक्ति

संस्कृत साहित्य में शोभा या सजावट के लिए रेखाओं के माध्यम से पुष्प, पत्र, लता आदि की आकृति-रचना हेतु 'भक्ति' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही किया गया है। रामायण में श्रीराम की भवन भित्तियों पर भक्तिरचना का उल्लेख हुआ है।

उत्कीर्णं भक्तिभिस्तथा[३५]

इसी प्रकार पुष्पभक्ति से सुशोभित लंकापुरी तथा काञ्चन तोरणों का भी वर्णन हुआ है। इस प्रकार भक्तिरचना स्त्री प्रसाधन विधि की प्रमुख अंग है। इनमें से प्रमुख है तिलक। आचार्य भरत ने तिलक और पत्रलेख को गण्डस्थल का आभूषण माना है।

तिलकाः पत्रलेखाश्च भवेद् गण्डविभूषणम्।[३६]

भक्तिरचना भूति के लिए, सौंदर्य, मंगल और श्री के लिए की जाती थी। इसका एक उद्देश्य स्त्री अथवा पुरूष के ललाट-कपोल-वक्षस्थलादि विशिष्ट अंगों को अन्य अंगों से विभक्त कर विशेष रूप से दर्शनीय बनाना भी था। शरीर पर स्थाई रूप से चित्र रचना के लिए गुदना (TATTOO)

गुदवाने की प्रथा विश्व के कई देशों में रही है और वर्तमान में भी प्रचलित है। कष्टसाध्य होने के कारण शनैः शनैः यह प्रथा कम हो रही है। इसके विपरीत शरीररंजन (बॉडी पेंटिंग) का प्रचलन न केवल पाचात्य देशों में अपितु भारत में भी बढ़ रहा है। रंगों और ब्रा के स्ट्रोक से शरीर पर आकर्षक डिज़ाइन बनवाकर लोगों को आकर्षित करते हुए युवक-युवतियों ने बॉडी पेंटिंग को फैशन का भाग बना दिया है। आज से कम से कम दो हज़ार वर्ष पूर्व भारत में यह कला विशेकछेद्य या भक्तिछेद्य के रूप में शरीर को सुन्दर बनाने की कमनीय कला विकसित हुई। निसर्ग के सुन्दर वर्णों से स्वयं को सजा लेने की कला थी जो आज एक लोकप्रिय व्यवसाय के रूप में भी द्रष्ट्व्य है।

३. गन्धयुक्ति

वात्स्यायन वर्णित चौंसठ कलाओं में महत्त्वपूर्ण कला है – गन्धयुक्ति अर्थात् सुगन्ध की योजना। ललितविस्तर की शिल्प सूची में भी इसकी गणना हुई है। विभिन्न प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों का निर्माण एवं उनका प्रसंगानुकूल सुरुचिपूर्ण प्राचीन भारत की एक कमनीय कला थी। गन्ध् धातु से अच् प्रत्यय लगकर निष्पन्न गन्ध शब्द का शब्दिक अर्थ है – आमोद। सुरभि-असुरभि के भेद से स्थूल रूप से यह दो प्रकार का है। महाभारत में गन्ध के दस प्रकार कहे गए हैं – इष्ट, अनिष्ट, मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रुक्ष एवं विशद।[३७] इष्ट गन्ध को सुगन्ध, नासिका को संतृप्त करने वाली गन्ध को सुरभि, आकर्षक गन्ध को निर्हारी, अति आकर्षक को आमोद और जगन्मनोहर गन्ध को परिमल कहते हैं।[३८] गन्ध पृथ्वी का गुण है। औषधियाँ एवं जल इसी गन्ध को धारण करते हैं। प्रत्येक पार्थिव तत्त्व में यही गन्ध बसी हुई है।

यस्ते गन्धः पृथिवी संबभूव यं बिभ्रत्योशधयो यमापः।[३९]
यस्ते गन्धः पुरूषेषु स्त्रीसु पुंसु भगो रुचिः।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषु हस्तिषु।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे.....।[४०]

प्रकृति ने मानव को अनेक सुगन्धित द्रव्य पुष्प, चन्दन, केसर, कुंकुम आदि उपहार स्वरूप प्रदान किए हैं। निसर्ग का ऋतु चक्र वर्ष भर नाना सुगन्धित सुमनों की सुगन्ध बिखेरता रहता है तो ऋतुराज बसन्त सम्पूर्ण चराचर को ही गन्धमय बना देता है। निसर्ग के इन्ही उपादानों का बहुविध संयोजन कर मानव ने गन्धयुक्ति की कला विकसित की है। जिस प्रकार सुन्दर रूप चक्षु इन्द्रिय को तृप्ति देता है उसी प्रकार सुन्दर गन्ध भी नासिका को तृप्त करते हुए आनन्द देती है। स्वयं आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण में कहा है –

गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्पभवान् वहन्।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत्।।[४१]

सुगन्ध में एक अद्भुत आकर्षण भी होता है। गन्ध के साथ आवेग भी सम्बद्ध होते हैं। अतः चिरन्तन काल से ही मानव आकर्षण हेतु अपने शरीर की गन्ध की वृद्धि के लिए सुगन्धित द्रव्यों

का प्रयोग करते हैं। कलाप्रेमी भारत के लोगों को सम्भवतः सर्वाधिक प्रेम सुगन्धित द्रव्यों से ही रहा है। वाल्मीकि का साक्ष्य इस बात का प्रमाण है। अयोध्या के लोगों में से कोई ऐसा नहीं था जो सुगन्ध का प्रयोग न करता हो।

नामृष्टो न न लिप्ताङ्गो नासुगन्धाश्च विद्यते।[४२]

भारतीय संस्कृति में सुगन्ध मानव के दैनन्दिन जीवन का अभिन्न अंग रही है जिसके प्रमाण वैदिक युग से ही प्राप्त होते हैं। देवता, अप्सराएँ और गन्धर्व इस गन्ध के प्रथम उपभोक्ता हैं। शतपथ ब्राह्मण में गन्धर्व शब्द की व्युत्पत्ति भी गन्ध से ही की गई है।[४३] इसी गन्ध प्रेम के कारण लोगों के सभी क्रियाकलापों में प्रयुक्त होने वाली वस्तु किसी न किसी गन्ध से सुवासित अवश्य होने लगी। वस्तुतः प्राचीन भारत में गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक सम्पूर्ण जीवन में गन्ध रची बसी थी। धर्मशास्त्र गर्भाधान संस्कार के समय स्त्री के लिए सुगन्धित अंगराग का विधान करते हैं[४४] तो कामशास्त्र के अनुसार स्त्रियों का आभिगमिक वेश 'विविधकुसुमानुलेपनं विविधाङ्गरागसमुज्ज्वलम्'[४५] होना चाहिए। अन्तिम संस्कार के समय सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग न केवल प्राचीन काल में अपितु वर्तमान में भी सप्रमाण प्राप्त होता है। इसका वैज्ञानिक कारण भी स्पष्ट है। इसी सुगन्ध प्रयोग व प्रेम ने 'गन्धयुक्ति' नामक कला को जन्म दिया। सुगन्धित पदार्थों को तैयार करके जीविकार्जन करने वाले शिल्पियों को 'गन्धोपजीवी' कहा जाता है। ये जीविका का भी साधन था। कौटिल्य के अनुसार अन्य शिल्पियों की भान्ति गन्धजीवी भी राजमण्डल से आजीविका प्राप्त करते थे।[४६] स्त्री-पुरूष सभी इस विद्या को सीखते थे। गन्धयुक्ति केवल कला ही नहीं विज्ञान भी था। मूलतः पाँच प्रक्रियाओं के माध्यम से गन्ध प्राप्त की जाती थी।

क) चूर्ण से- यथा लोध्रचूर्ण, पारिजातचूर्ण, पत्रचूर्ण आदि।

ख) घर्षण से- यथा चन्दन, अगरू आदि।

ग) दाहाकर्षण से- विविध प्रकार के धूप गुग्गुल आदि।

घ) सम्मर्दन से- यथा करबी, बिल्ब, केतकी, तिलक आदि।

ङ) प्राणी के अंग से- यथा मृगनाभि से उत्पन्न कस्तूरी।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में चन्दन, अगरू, तैलपर्णिक, भद्रश्रीय (कर्पूर), कालेयक आदि सुगन्धित द्रव्यों के उत्पत्ति स्थान, प्रकार एवं गुणों का विस्तृत वर्णन हुआ है।[४७] तदनुसार चन्दन नौ रंगों वाला तथा छः प्रकार की गन्ध वाला होता है। देवसभ नामक स्थान में उत्पन्न चन्दन रक्तवर्ण और पद्मगन्धि होता है। उत्तम चन्दन लघु, स्निग्ध, मनोहर गन्ध वाला, वर्णविकार से रहित, शीतल और संतापहारी होता है।

संस्कृत साहित्य में इस कला से निर्मित द्रव्यों के दैनन्दिन उपयोग के असंख्य सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जिनका विवेचन निम्न प्रकार से प्रस्तुत है –

क) गन्धोदक

यह जल में सुगन्धित द्रव्यों को मिलाकर तैयार किया जाता था। प्राचीन भारत में नागरिक की दिनचर्या ही सुगन्ध के उपयोग से प्रारम्भ होती थी। दन्तधावन के लिए वह जिस दातून का प्रयोग होता था वह गन्धोदक से सुवासित होती थी। दन्तधावन का उल्लेख रामायण काल से ही होने लगा था।

शुक्लानंशुमतश्चापि दन्तधावनसंचयान्।[४८]

हर्रे के चूर्ण से मिश्रित गोमूत्र में सात दिन तक डूबे हुए दन्तकाष्ठ को समभाग में इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, अञ्जन, मधू, नागकेसर और कूठ के मिश्रण से बने गन्धोदक में भिगोकर सुवासित किया जाता था। तत्पचात् चार भाग जायफल, दो भाग तेजपत्र, एक भाग इलायची और एक भाग कर्पूर के मिश्रण से बने बारीक गन्धचूर्ण दन्तकाष्ठ पर मसलकर इन्हे धूप में सुखाकर रखा जाता था।[४९] वराहमिहिर के अनुसार इस विधि से निर्मित दन्तकाष्ठों के सेवन से स्वास्थ्य, सौन्दर्य और मांगल्य की वृद्धि होती है।[५०] राजा-महाराजाओं एवं सम्भ्रान्त नागरकों के स्नानार्थ बनाए गए सुगन्धित जल के रूप में भी गन्धोदक का उपयोग होता था। रामायण के अनुसार महाराज दशरथ के लिए प्रतिदिन स्नानविधि के ज्ञाता भृत्यों के द्वारा काञ्चन घटों में हरिचन्दन से सम्पृक्त जल प्रस्तुत किया जाता था।

हरिचन्दनसम्पृक्तमुदकं काञ्चनैर्घटैः।
आनिन्युः स्नानशिक्षाज्ञा यथाकालं यथाविधि।।[५१]

राजप्रासादों एवं सम्पन्न नागरिकों के हर्म्यतलों को ग्रीष्म ऋतु में शीतल व सुवासित करने के लिए भी गन्धोदक का प्रयोग होता था। दशकुमारचरित में भी शीतोपचार के लिए हरिचन्दन, उशीर और कर्पूर जैसे शीतलद्रव्यों के मिश्रण से जल तैयार किए जाने का वर्णन है।[५२]

ख) अंगराग अनुलेप एवं सुगन्धित चूर्ण

स्नान के पूर्व एवं पश्चात् शरीर को रंगने के लिए प्रयुक्त अंगराग में भी सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग होता है। रघुवंश के अनुसार अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया ने सीता को जो अंगराग उपहार में दिया था, उसकी सुगन्ध से वन के भ्रमर भी आकर्षित हो जाते थे।

अनसूयातिसृश्टेन पुण्यगन्धेन काननम्।
स चक्रुरङ्गरागेणपुश्पोच्चलितषट्पदम्।।[५३]

स्नान के पश्चात् सम्पूर्ण शरीर अथवा वक्षस्थल एवं मस्तक पर सुगन्धित लेप का प्रयोग प्राचीन प्रसाधन विधि का अनिवार्य अंग था। स्नान के पश्चात् यह कार्य होने के कारण ही इसे 'अनुलेप' कहा जाता था। शरीर की त्वचा को स्निग्ध, उज्ज्वल, कान्तियुक्त एवं सुवासित करने के लिए अगरू, केसर, चन्दनादि के मिश्रण से सुगन्धित लेप तैयार किए जाते थे। ग्रीष्म एवं वसन्त में शीतल, स्निग्ध एवं हल्का होने के कारण चन्दन का लेप ही अधिक रुचिकर होता था। इसे और

सुगन्धित करने के लिए इसमें कस्तूरी भी मिला दी जाती थी।

प्रियङ्गुकालीयक कुङ्कुमाक्तं स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः।

आलिप्यते चन्दनमङ्नाभिमदालसाभिमृगनाभियुक्तम्।।[५४]

वर्तमान में भी इनका प्रयोग मानव द्वारा द्रष्ट्व्य है। विभिन्न प्रकार की सुगन्धियों से युक्त अंगराग, लेप व चूर्ण विद्यमान हैं जो शारीरिक सौंदर्य में वृद्धि करते हैं।

ग) गन्धतेल

गन्धतेल का उपयोग मुख्यतः शिर एवं शरीर की मालिश और केशों को सुवासित करने के लिए होता था। हर्षचरित में सहकार तेल का उल्लेख है। सहकार एक प्रकार का सुगन्धित आम था जिससे तेल आदि सुगन्धित द्रव्य बनते थे।[५५] कृष्णागरू का तेल बाँस की नलियों में भरकर पत्तों में लपेटकर सुरक्षित रूप से सुदूर प्रान्तों में भेजा जाता था। राजभवनों में दीपक भी सुगन्धित तेल से जलाए जाते थे। रामायण में गन्ध तेल से वासित 'सुरभिगन्धोद्गारिणी दीपिकाओं'[५६] का वर्णन हुआ है। भारतीय समाज में यह कला अत्यन्त व्यापक रूप में प्रचलित है। सौंदर्य वृद्धि एवं आकर्षण के लिए सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग सम्पूर्ण विश्व में किया जाता है।

४.आभूषणयोजना

वात्स्यायनोक्त चौंसठ कलाओं में से शरीर के विभिन्न अंगों को भूषित करने वाले आभूषणों की योजना भी एक कला है। कामसूत्र के टीकाकार यशोधर ने इसे 'अलंकारन्यास' कहा है। शरीर को रत्नों की आभा से भर देने के कारण आभूषणों को 'आभरण', अलंकरण या पर्याप्तीकरण के कारण 'अलंकार', विष रूप से मण्डित करने के कारण 'विभूषण' या 'मण्डन' कहा जाता है। मानव के अत्यधिक अलंकरण प्रेम, जीवन के प्रति कलात्मक दृष्टिकोण एवं प्राचीन भारत की भौतिक समृद्धि ने ही 'भूषण-योजनम्' की कला को जन्म दिया। शुक्रनीतिसार में इसे 'सुवर्णाद्यलंकारकृतिः' कहा गया है। आभूषणों को धारण करने की दृष्टि से आभूषण चार प्रकार के होते हैं।

क) आवेध्य- जो अंगों को वेध कर पहने जाते हैं। कुण्डलादि।

ख) बन्धनीय- जो अंगों पर बान्धकर पहने जाते हैं। करधनी आदि।

ग) क्षेप्य- जिन्हे शरीर पर स्थापित किया जाए। नुपुरादि।

घ) आरोप्य- जो आरोपित किए जाएं। हारादि।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में शिर से नख तक के आभूषणों का विस्तारपूर्ण वर्णन अहार्य अभिनय के द्वितीय अंग 'अलंकार' के अन्तर्गत हुआ है।[५७] मानव प्रकृति से ही सौंदर्य प्रेमी है। अतः आभूषणों के प्रति उसकी विशेष रुचि रही है। विभिन्न कवियों व लेखकों ने अपनी कृतियों में इनका भरपूर प्रयोग किया है। वात्स्यायनोक्त इस कला से निर्मित ये आभूषण आज भी अपने रत्नों की आभा से मानव को मुग्ध किए हुए हैं। आज के समय में यह कला एक श्रेष्ठ व्यवसाय के रूप में उभरी है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सौंदर्य के प्रति मानव की दृष्टि सदा से ही रही है।

शास्त्रोक्त आभूषण परम्परा प्राचीन काल से ही समाज में व्याप्त है। आधुनिक समय में भी ये समस्त कलाएं उतनी ही उपयोगिनी हैं जितनी कि प्राचीन समय में थीं। इन समस्त कलाओं का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति ही नहीं था परन्तु मनुष्य ने समय के साथ साथ इन्हे आकर्षण और व्यवसाय का साधन भी बनाया है। इससे इनकी उपयोगिता सम्प्रति और भी अधिक बढ़ गई है।

संदर्भ :

१. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, कला शब्द।
२. कामसूत्रम् १.३.१५
३. अथर्ववेद ३.२२.४
४. अथर्ववेद २०.१२०.१५
५. अथर्ववेद ८.६.२६
६. रामायण, बा. का. २६.२
७. रामायण अयो. का. ५.११
८. रामायण बा. का. ६.१०
९. अमरकोश काण्ड २ मनुष्यवर्ग ६.१३५
१०. ऋतुसंहार २.२१
११. रघुवंश ९.५१
१२. रघुवंश १९.३७
१३. प्रालम्बमृजुलम्बि स्यात्। अमरकोश २.६.१३६
१४. ऋतुसंहार १.६
१५. ऋतुसंहार १.८
१६. रघुवंश ६.८४
१७. रामायण अयो. का. ३.९
१८. कामसूत्र ४.१.३६
१९. शब्दकल्पद्रुम माला शब्द
२०. चरकसंहिता, सूत्रस्थान ५.९३
२१. स्वप्नवासवदत्तम् अंक ४
२२. कामसूत्र, यशोधरटीका १.३.१५
२३. अमरकोश २.१२२-१२३
२४. कामसूत्र, यशोधरटीका १.३.१५
२५. शिशुपालवध ३.६३
२६. रघुवंश ३.५५
२७. कुमारसम्भव ३.३३

२८. रामायण अर. का. १५.१८
२९. कुमारसम्भव ३.२०
३०. मालविकाग्निमित्र ३.५
३१. कुमारसम्भव ८.८८
३२. नैशधीयचरित १०.८६
३३. कादम्बरी पृष्ठ ३६९
३४. कादम्बरी पृष्ठ ५३२
३५. रामायण अयो १५.३५
३६. नाट्यशास्त्र २३.२२७
३७. महाभारत १४.५०.४०-४२
३८. अमकोश १.५.१०-११
३९. अथर्ववेद १२.१.२३
४०. अथर्ववेद १२.१.२
४१. रामायण अयो. ९४.१४
४२. रामायण बा. का. ६.१०
४३. गन्धेन वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरश्चरन्ति। शतपथ ब्राह्मण ९.४.१.४
४४. बैखानस स्मार्तसूत्र ३.९
४५. कामसूत्र ४.१.२४
४६. अर्थशास्त्र ७.२.३७-४१
४७. अर्थशास्त्र २.११.४४-७६
४८. रामायण अयो ९१.७५
४९. बृहत्संहिता ७७.३१-३३
५०. बृहत्संहिता ७७.३४
५१. रामायण अयो. ६५.८
५२. दशकुमारचरित पूर्वपीठिका उ.१ पृ १२१
५३. रघुवंश १२.१७
५४. ऋतुसंहार ६.१४
५५. हर्षचरित संकेतटीका पृष्ठ ३८
५६. रामायण सुन्दर ४.५३
५७. नाट्यशास्त्र २३.१०-४२

शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

शिमला जनपदीय लोकगाथा में भारत चीन युद्ध का इतिहास

राजेन्द्र कुमार शर्मा

शिमला जिले के ग्रामीण परिवेश में विभिन्न पर्वों एवं उत्सवों पर भिन्न-भिन्न आख्यानों, उपाख्यानों तथा कथानकों के आधार असंख्य गाथाएं गायन परम्परा में गाई जाती है। इन गाथाओं में कालक्रम की कई घटनाओं, युद्धों और ऐतिहासिक चरित्रों का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। गाथाकार का मन जब किसी घटना से उद्‌वेलित हो जाता है तो वह उस घटना को अपने गीतों में पिरोता है। जब वही गीत कथा रूप में भी सुनाएं जाने लगते हैं तो वे गीत, गाथा का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी ही एक गाथा शिमला जिला जो पूर्व में महासू जिला के नाम से प्रचलित था तथा सतलुज नदी घाटियों के सीमावर्ती गांव-गांव में भारत-चीन युद्ध के मार्मिक कथानक को लेकर प्रचलित है। एक गाथा में हिन्दी चीनी भाई-भाई का नारा देने वाला चीन देश किस प्रकार राक्षसी वृत्ति धारण कर भारत पर आक्रमण करता है उस घटना को गाथाकार ने अपने शब्दों में पिरोया है।

भारत चीन सम्बन्ध अपनी सीमाओं तथा तिब्बत पर चीन के कब्जे के कारण सौहार्दपूर्ण नहीं रहे हैं। इसी संदर्भ में पाकिस्तान के साथ चीन की निकटता भारत को १९६२ के युद्ध से पूर्व भी और बाद में भी संदेहास्पद स्थिति में रही है। भारत अनेक विषयों पर चीन के मधुर सम्बन्धों की दिशा में आगे बढ़ने के लिए समझौते करता रहा है। तिब्बत पर चीन के अधिकार से सम्बन्धित १९५४ में भारत चीन संधि, पंचशील के मार्ग पर चलने की दिशा में एक कदम था। वास्तव में चीन अपनी साम्राज्यवादी सोच के आधार पर भारत को सीमाओं के मसले पर छेड़-छाड़ करता रहता था। १९५९ में चीन ने कोंगका दर्रे में भारतीय सुरक्षा दल के ५ जवानों को गोलियां से मार दिया। अप्रैल १९६० में अधिकारी स्तर की बैठकें तथा पत्र व्यवहार हुआ।[१]

८ सितम्बर, १९६२ को चीनी फौजियों ने थांगला पहाड़ी पर हमला बोल दिया।[२] भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू ने चीन को गंभीरता से नहीं लिया। वे राष्ट्रमण्डल की प्रधानमन्त्री सम्मेलन के लिए लन्दन चले गए। प्रधानमन्त्री नेहरू ने चीन को हल्के में क्यों लिया। इसके दो कारण हैं – एक तो अपनी साम्यवादी विचार रखने के कारण चीन पर अति विश्वास रखते थे, दूसरे पंचशील के नेता होने के कारण विश्व नेता बनने की इच्छा उन पर सवार थी। भारतीय सेना के पास हथियार ही न थे जिससे दुश्मनों का सामना किया जा सके। देश का बच्चा-बच्चा इस युद्ध से निपटने के लिए भारत मां का आदर्श अपने समक्ष रखकर बलिदान देने और देश रक्षा के लिए खड़ा होने लगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ असम क्षेत्र में अपने स्थान पर टिके रहने और दुश्मनों का सामने करने के लिए प्रेरित

कर रहा था। उस समय असम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रान्त प्रचारक माननीय ठाकुर रामसिंह जी थे। पर चीन सीमा हिमाचल प्रदेश के शिमला किन्नौर के साथ लगने से वातावरण में जोश था जो इस लोकगाथा में आया है।

भारत चीन युद्ध की लोकगाथा के पद

इस लोकगाथा को स्थानीय व्यक्ति हरिराम प्रेमी[३] ने लिखा है और इसे १९६३ में आकाशवाणी शिमला में भी गया था। लोकगाथा भारत चीन युद्ध की घटनाओं पर आधारित है इस लोकगाथा के माध्यम से ग्रामीण लोगों में राष्ट्रभक्ति की भावना को जगाना तथा नौजवान युवकों को वीरों की तरह युद्ध भूमि में जाने के लिए प्रेरित करना है, ताकि ग्रामीण जनता भी भारत और चीन की लड़ाई को समझ सके और भारत मां की सुरक्षा में अपना योगदान दे सके। प्रस्तुत लोकगाथा में चीनी आक्रमण की योजना का चित्रण है–

लोकगाथा का मूलपाठ	लोकगाथा का हिन्दी रूपान्तर
रुण झूणों लाओले मेरे भारत माता	मेरी भारत माता गुम सुम है
चाउ माउ बोरिया मुखे सूंचो घाता।।१।।	चाउ माउ दुश्मन ने मेरे लिए आक्रमण का सोचा।
आगे लागो बोलदे चाउ एन लाये।	चाउ एन लाये आगे बोलने लगा
आगूये जूगा ओरू हिन्दी चीनी भाये।।२।।	आने वाले युग में हिन्दी-चीनी भाई-भाई होंगे।
मौना छोड़ो कोपेटा मूंआं भौजा लौ रामा	मन में कपट रखा और मुंह में राम भजा।
जीणा कीणा ठोगा पूचा बोरिआ आमा।।३।।	जैसे-कैसे उस दुश्मन ने हमें ठगा।।३।।
चीना बोसा राकेसा एथ देवता रो बासा।	चीन में राक्षस बसते हैं और भारत में देवताओं का वास है।
काटा पूजा बोरिया मेरी सीमां री पाखा।।४।।	उस दुश्मन ने मेरी सीमा के पंख काटने का सोचा।
सीमां मांथी बोरिया छांओणे पाये	सीमा के उपर उस दुश्मन ने अपनी छावनी डाली
म्हारे देशो री चौकी रे कीये साफाये।।५।।	और हमारे देश की चौकी का सफाया किया।।५।।
नेफा री चौकी छीनी उपसी आसामां	उपरी आसाम में नेफा की चौकी छीनी
चूपा चूपा बोरिआ तांई ठौगा आमां।।६।।	चुपचाप से दुश्मन ने हमें ठगा।।६।।
आले छूंअे जूबड़ा मेरे काशमिरा लद्दाखा।	मेरे कश्मीर और लद्धाख की सीमा भी तूने छू ली है
फौजी सपाही मेरी जीउंदी न राखा।।७।।	फौजी सिपाही मेरे जिंदा नहीं रखे।।७।।
भारेता माता मेरे गाड़ा ले रोये	भारत माता मेरी घुट-घुट के रो रही है।
मेरे ऐसे मुकटा रो ठाण होडो खोय।।८।।	मेरे इस मुकुट की शान खो गई है।।८।।
छाड़ी जुहारालाला आखी आशूरी धारा।	जवाहरलाल ने आंखों से आंसुओं की धारा छोड़ दी है।
सीमां माथी बोरिआ मेरा आदेमी मारा।।९।।	सीमा के उपर दुश्मन ने हमारे आदमी मार दिए हैं।
तोल रूंआ धौतरे गाशुओं आकाश।	नीचे धरती रोती है और उपर आकाश
म्हारी कीओं बोरिआ फौजी रो नाशा।।१०।।	दुश्मन ने हमारे फौजियों का नाश किया।।१०।।

काम्बा लो सौरेगा धौतरीरै माटे

एकू नीड़ा कैदौखी एकू पायेड़ा काटे।।११।।
एक पूजे खौवरा सारे हिन्दुस्ताना
चालो भाईओ बोरी सोगा लौड़ादे जाणा।।१२।।
सभी लागे बोलदे भारती जुआनौ
सीमां माथी बोरी सोंगा लौड़ादे जाणा।।१३।।
पूरेबा पौछया देशा होयेगा एका
राम-राम रामाय हुए देखेणा सेका।।१४।।
मेरे देशा भारतो रा जीउणा सौखा
तेरे मोरा चीनादे सारा आदमी भोखा।।१५।।
तेरे माहा चीना बौसा राकसा रे जाता
देवा केरे धौतरे मेरे भारत माता।।१६।।
हिमाचल प्रदेश मेरे देशा रे छाते
टाइ ठकराई एथे खूंदारे नाटे।।१७।।
लाहौला सीपीते मेरे चाम्बे और वीला
आश मेरे बोरिआ केला पाये बीला।।१८।।
भारती जुआना तौखे देडे माराला
केला गोरो बोरिआ लौड़ने रे साराला।।१९।।
महासू कन्नौरा तेरी सीमां रा दांये
शिवकोटा शिवकी आमां छाओणे पाये।।२०।।
रौण खेलूला भारेंता बोअरी सोंगा
देशा री तांइया मौरिया लो रोंगा।।२१।।
देशा री ताइंया मौरिया लो शौयें
ऐजें मौना दें इच्छेआ रौये।।२२।।
रणजोधा खेलानों मेरे बोअरि सोंगा।
लौड़ेआ पारेंमीआ मोरिआ लो रांगा।।२३।।
फौजी सिपाही म्हारा जाबे लोड़दे लागा।
चीनी केरा फौजी ताबे भागा दे लागा।२४।।
सेजी गांई छेआड़ी देशा खी झौरा।

सेजा गांइ मैरेदा सौणों खी गौरा।।२५।।

आकाश कांप गया और धरती की मिट्टी भी कांप गई है।
कोई कैद को ले लिए है और कोई काट दिए हैं।
ये खबर पूरे हिन्दूस्तान में पहुंच गई है
चलो भाइयों दुश्मन के साथ लड़ने जाना है।
सब बोल रहे ए भारतीय जवानों
सीमा के उपर दुश्मन से लड़ने जाना है।
पूरब और पश्चिम के देश एक हो गए हैं
जब तक हाय-हाय न हुई तब तक देखते रहे ।
मेरे देश भारत में जीना आसान है।
तेरे चीन में सब आदमी भूखे हैं।
तेरे चीन में राक्षस की जात बसती है।
मेरी भारत माता देवी और देवताओं की धरती है।
हिमाचल प्रदेश मेरे देश की छाती है।
ढाई-ठकुराई और खूंद की नाटी होती है।
लाहौल स्पीति और चम्बा मेरे दिल हैं।
मेरे दुश्मन आ जा देर क्यों कर रहा है।
भारतीय जवान तुझे मारने के लिए तैयार हैं।
बेशक सारे दुश्मन क्यों न लड़े।।१९।।
महासू किन्नौर तेरी सीमां के दायं है
शिवकोटा शिवकी में हमने छावनी डाल दी है।
भारत के दुश्मन के साथ में युद्ध खेलूंगा।
देश की खातिर बेशक मर भी जाउंगा।।
देश की खातिर मर भी जाउंग
ये मेरे मन में इच्छा रही है।
रण युद्ध खेलूंगा मैं अपने दुश्मन के साथ
वहां पर लड़ते मर भी गया तो कोई बात नहीं।
फौजी सिपाही जब हमारे लड़ने लगे।
चीन के फौजी तब भागने लगे।
जो औरतें देश की खातिर मर मिट गई वो अमर हो गई
जो मर्द देश की खातिर मर मिट गए वो भी अमर हो गए।।२५।।[४]

रुणझूणों लाओले मेरे भारत माता ।
चाउ-माउ बोरिया मुखे सूंचो घाता।।

इस पद में चोऊ एन लाई जो उस वक्त चीन का राष्ट्रपति था उसके बारे में बताया गया है। साथ ही भारत पर आक्रमण का भी जिक्र किया गया है। भारत मां गुम सुम है कि चीन ने भारत पर आक्रमण किया और भारत की भावनाओं को आहत किया।

आगे लागो बोलदे चाउ एन लाये।
आगूये जूगा ओरू हिन्दी चीनी भाये।।

प्रस्तुत पद में लोकगाथाकार चाउ एन लाई के बारे में कहता है कि भारत चीन के मध्य समझौता हुआ जिसमें हिन्दी चीनी भाई-भाई का नारा दिया गया।

मौना छोड़ो कोपेटा मूंआं भौजा लौ रामा।
जीणा कीणा ठोगा पूचा बोरिआ आमा।।
चीना बोसा राकेसा एथ देवता रो बासा।
काटा पूजा बोरिया मेरी सीमां री पाखा।।

चीन शासन की कपटपूर्ण नीति का इन पंक्तियों में वर्णन किया गया है। यह कपट उसकी साम्राज्यवादी नीति का दर्शन करवाती है। चीन की राक्षस वृति तथा भारत की देववृत्ति होने की बात गाथाकार कर रहा है।

सीमा मांथी बोरिया छांओणे पाये।
म्हारे देशो री चौकी रे कीये साफाये।।
नेफा री चौकी छीनी उपसी आसामां।
चूपा चूपा बोरिआ तांई ठौगा आमां।।

इन पदों में कहा गया है कि सीमा के ऊपर दुश्मन ने अपनी छावनी बना ली है। नेफा जिसे अरुणाचल प्रदेश कहते हैं, यहां पर भारतीय छावनियों पर युद्ध की बात कर रहा है। कहने का अर्थ यह है कि १९६२ में जब चीनी फौज ने बड़े पैमाने पर हमला कर दिया और पूर्व सेक्टर नेफा में भारतीय चौकियों पर कब्जा कर लिया इन पंक्तियों में चौकियों के भारी हानि के बारे में भी बताया गया है –

आले छुआ जुबड़ा .....जीउंदी न राखा।
तोल रूंआ धौतरे .....फौजी रो नाशा।।

गाथा के इन पदों में गाथाकार हमारे लद्दाख के क्षेत्रफल चीनी फौजियों का अधिकार के बारे में बता रहे है और भारतीय फौजियों सिपाही के मारे जाने की व्यथा भी इन पंक्तियों में कह रहा है। शत्रु ने हमारे सिपाहियों को कैद कर लिया है और कई को मार डाला। यह दुखद समाचार सारे हिन्दुस्तान में फैलाने का भाव यह है कि जब चीनियों ने भारत की छावनी पर कब्जा किया तो बहुत सारे फौजी घायल हुए कुछ को चीनी फौजी अपने कैद में रखा था, यह देखकर देश में गुस्से की लहर दौड़ पड़ी और चीनियों के इरादों पर प्रश्न चिन्ह लग गया। सभी सोचने लगे कि चीनी आसाम पर

कब्जा कर लेंगे शायद दूसरे क्षेत्रों पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लेंगे। गाथाकार भारत सरकार को सचेत कर रहा है कि आने वाले खतरे को भाप सके इस प्रकार के जागरण गाथाकार अपने इन पंक्तियों में कर रहा है।

पूरेबा पौछया देशा .....देखेणा सेका।
सेजी गांई छेआड़ी .....सौणों खी गौरा।।

इस सब पदों को मिलाकर जब हम देखते हैं कि उसमें चीन की राक्षसवृत्ति पर गाथाकार अपना ध्यान आकर्षित करता है। हिमाचल प्रदेश के शिमला-किन्नौर से लगी सीमा पर भारत की रक्षा करने के लिए सैनिकों के साथ कंन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के लिए महासु जिले का बच्चा-बच्चा तैयार है। यहां की शक्तिसामर्थ्य पर कोई शंका नहीं कर सकता है। हिमाचल के लोगों की दुश्मन को धूल चटाने तक की क्षमता का वर्णन करता है। वह कहता है कि पहाड़ के लोग रण छोड़ नहीं है। अपने देश की रक्षा के लिए अपनी जान देने के लिए तैयार हैं। हमारे सिपाही जब लड़ने लगेंगे तो चीनी सेना के छक्के छूट जाएंगे।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर शिमला जनपदीय महासू की भारत चीन युद्ध की लोकगाथा में १९६२ के भारत चीन युद्ध के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है और इस लोकगाथा से पता चलता है कि हिमाचल प्रदेश के ग्रामीण लोगों को इसके बारे में जानकारी थी कि शत्रु से किस प्रकार से मुकाबला करना है। वस्तुतः लोकगाथाओं में इतिहास से जुड़े तथ्य होते हैं। गाथाकार कालक्रमिक ऐतिहासिक घटनाओं को अपने मार्मिक शब्दों में पिरोकर किस प्रकार श्रौत परम्परा में जीवन्त बनाए रखता है, यह गाथा उसका प्रबल प्रमाण है। इस गाथा में भारत-चीन के युद्ध की प्रामाणिक घटनाओं का सुन्दर चित्रण गाथाकार करता है। यही इस गाथा की ऐतिहासिकता है।

संदर्भ :

१. विपन चन्द्र, मुदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, आजादी के बाद का भारत १९४७-२०००, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, २००४, पृ. २२३
२. वही, पृ. २२३
३. हरिराम प्रेमी, प्रेमिल स्वर, शिमला : त्रिलोक प्रकाशन, बज्रेतकोटि, शिमला. १९६६ पृ. ८५
४. साक्षात्कार वासुदेव, आयु ५९, गांव घुपाड़ी, डॉ. लोअरकोटि, तह0 रोहड़ू, जिला शिमला हि.प्र., पिन न. १७१२०७
   कल्पना चौहान, आयु २५, गांव घुपाड़ी, डॉ. लोउरकोटि, तह. रोहड़ू, जिला शिमला हि.प्र. पिन-१७१२०७

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. शर्मा, डॉ. श्रीराम लोक साहित्य : स्वरूप और मूल्यांकन निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली - १९९७
२. सिंह डॉ. भवानी, हिमाचल की लोकगाथाएं, एकीकृत हिमालयन अध्ययन संस्थान, जयपुर २०१२
३. कृष्ण डॉ. कमल, हिमाचल प्रदेश का लोक साहित्य लोक कथाओं के परिप्रेक्ष्य में, आचार्य

आकादमी, रोहतक २०१५

४. प्रेमी हरिराम, प्रेमिलस्वर शिमला, त्रिलोक प्रकाशन ब्रजेटकोटि, शिमला १९६०

५. शर्मा डॉ. ओम प्रकाश, लोक गाथा दिग्दर्शिका, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान हमीरपुर हि.प्र.

६. चन्द्र विपन, मुखर्जी, मुदुला, मुखर्जी आदित्य, आजादी के बाद का भारत १९४७-२०००, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली २००४

साक्षात्कार

१. कल्पना चौहान, शिक्षा एम.फिल, आयु २५ वर्ष, गांव छुपाड़ी, डॉ. लोअर कोठी, तह. रोहड़ू, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश, पिन १७१२०७

२. वासुदेव, शिक्षा दसवीं, आयु ५९ वर्ष, गांव छुपाड़ी, डॉ. लोअर कोठी, तह. रोहड़ू, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश, पिन न. १७१२०७.

३. निशा कुमारी, शिक्षा एम.फिल, आयु ३८ वर्ष, गांव चौपाल, डा. चौपाल, तह. चौपाल, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश।

शोधार्थी,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला (हि.प्र.)

व्यक्ति विशेष

सामाजिक विचार क्रान्ति के पुरोधा - दत्तोपन्त ठेंगड़ी

चेतराम गर्ग

महान चिन्तक, समाज सेवक, संगठक तथा सामाजिक विचार दर्शन के अनूठे सर्जक दत्तोपन्त ठेंगड़ी विश्व पटल पर सर्वपक्षों के अध्येता थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक होने के साथ वे भारतीय मजदूर संघ, भारतीय किसान संघ, सामाजिक समरसता मंच, सर्वपंथ समादर मंच, स्वदेश जागरण मंच तथा पर्यावरण मंच के संस्थापक रहे हैं। यह उनका शताब्दी वर्ष है इसलिए इतिहास दिवाकर पत्रिका उनके जीवन और कार्य पर क्रमशः लेख माला प्रकाशित करने जा रहा है। उस शृंखला में यह प्रथम आलेख है जो उनके साथ मेरी निजीवार्ता तथा उनके प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डालता है।

मुझे माननीय ठेंगड़ी जी के दर्शन करने का सुअवसर शिमला प्रवास के समय मिला। शिमला जिला व शिमला नगर जिला प्रचारक का दायित्व होने के कारण उनके आवास, भोजन आदि व्यवस्था मैं ही देख रहा था। यह बात १९९८-९९ की है। वे एक कार्यक्रम के निमित्त शिमला पधारे थे। गुलमार्ग होटल के मालिक मूलराज जी उस समय हमारे नगर संघचालक थे। सप्ताह में एक बार मंगलवार को मेरा भोजन उनके घर पर रहता था। इसलिए मुझे उनके परिवार में माननीय ठेंगड़ी जी की सुविधा और जरूरत के लिए किसी प्रकार की दिक्कत नहीं थी। उनके आने तथा सामान आदि वस्तुओं को व्यवस्थित रखने के बाद मैंने उन्हें अपना परिचय दिया। उन्होंने बड़े अच्छे सहज ढंग से मुझे सुना। उन्होंने सब बात सुनने के बाद दो बातें पूछी – एक तो पढ़ाई की और दूसरी कि तुम किस उम्र में प्रचारक निकले? मैंने दोनों बातें बताई। फिर वे बाले – अच्छा तो तुम भी २३ वर्ष में प्रचारक निकले? मैं भी २३ वर्ष की आयु में ही प्रचारक निकला था। अभी भी मुझे काम से छोड़ते नहीं हैं। लगाए रखते हैं। मैं हंसने लगा। फिर मैं बोला – आप तो किसान, मजदूर, विद्वान सबको काम में लगाए रखते हैं। मैं आपकी किताबें पढ़ता हूं। फिर वे हंसे। ऐसा लगता है कि तुम भी पक्के प्रचारक बन गए हो। हम दोनों जोर से हंसे। शिमला के काम के विषय में उन्होंने मेरे से बात की। मैंने सारी शाखा और कार्य विस्तार की पूरी जानकारी दी। सत्ता और सरकार के बारे में चर्चा हुई। उस विषय में उन्होंने बताया था कि यह जल्दबाजी का कार्य नहीं है। इस ओर दौड़ना नहीं चाहिए। उस लालच में गिर पड़ने की ही अधिक संभावनाएं होती है। जल्दबाजी का कार्य कष्टकारी है। मैं दो दिन उनके साथ रहा। हर शब्द के साथ उनका आत्मीय प्यार अपनी ओर खींचता था।

जन्म

दत्तात्रेय बापुराव ठेंगड़ी उपाख्य दत्तोपन्त ठेंगड़ी का जन्म शक् सम्वत् १९८२ तदनुसार

१० नवम्बर, १९२० जिला वर्धा आर्वी नामक स्थान महाराष्ट्र में पिता बापूराव दाजीबा ठेंगड़ी माता जानकी बाई ठेंगड़ी जी की कोख से हुआ था।[१] यह बापुराव दाजीबा ठेंगड़ी प्रसिद्ध और सफल अधिवक्ता थे। स्वभाव में कठोर थे। मां की प्रेरणा से वे शाखा में जाने लगे। आगे जाकर उनकी श्री गुरुजी से निकटता ने लगभग उनके प्रचारक निकलना निश्चित कर दिया था। पर इस बात को अधिवक्ता बापूराव से कौन करे, यह कोई सरल कार्य न था। इसके लिए भी योजना बनाई गई। विजयदशमी का उत्सव था। उनके पिता बापूराव भी उस कार्यक्रम में पूर्ण गणवेश में उपस्थित थे। आर्वी तालुका के माननीय संघ चालक तथा दत्तोपन्त के संघ कार्य के प्रेरणास्रोत डॉ. अग्णा साहेब देशपाण्डे जी ने सूचना दी कि अपने आर्वी नगर के प्रसिद्ध अधिवक्ता श्री बापुराव ठेंगड़ी के सुपुत्र दत्तोपन्त ठेंगड़ी वकालत की परीक्षा उतीर्ण करने के पश्चात् केरल में संघ प्रचारक के रूप में जा रहे हें।[२] यह बापूराव पर बिजली गिरने जैसा ही था।

अगली बात इससे भी मजेदार है। बापूराव ने घर जाकर यह जानकारी दत्तोपन्त की जननी जानकी ठेंगड़ी को दी। जानकी ठेंगड़ी बड़े शान्त स्वभाव से बोली, ''दत्तू का जन्म ही देश कार्य के लिए हुआ है। उसकी क्षमता तो नागपुर में श्री गुरु जी ने पहचानी है और उसे विशेष रूप से केरल का काम दिया है। २२ मार्च, १९४२ को ठेंगड़ी जी प्रचारक बनकर केरल के लिए प्रस्थान कर गए।

शिक्षा

दत्तोपन्त जी की प्रारम्भिक शिक्षा आर्वी स्थित म्यूनिसिपल स्कूल में हुई। दत्तोपन्त कुशाग्र बुद्धि थे। दत्तोपन्त ने १९३७ में ग्यारहवीं की परीक्षा आर्वी से पास की तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने नागपुर चले गए। नागपुर विश्वविद्यालय से स्नातक तथा एल.एल.बी की डिग्री प्राप्त की।

विद्यार्थी काल से ही संगठन कार्य

दीप पुंडलिक लिखती है कि किशोरवय में ही दत्तू के अन्दर छिपा हुआ संगठनकर्त्ता भाव जागृत होने लगा था।[३] स्वतन्त्रता आन्दोलन की गूंज चहुंओर थी। स्कूली वातवारण पर भी उसका प्रभाव था। कुशाग्रबुद्धि होने के कारण दत्तू का ध्यान स्वाभाविक रूप से उस ओर होने लगा। जिस कारण से वे वानर सेना आर्वी कमेटी का निर्माण १९३५, सचिव – पुअर ब्याज कमेटी, संगठक – झुग्गी झोपड़ी मण्डल १९३६ एवं आर्वी विद्यार्थी संघ १९३५-३६ का गठन किया।[४]

दत्तू की आयु १४-१५ वर्ष की रही होगी। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए सफेद टोपी पहनकर चौहारे पर चला जाता था। आन्दोलन का भूत सवार हो गया था। पिताजी ने फटकारा और कहा – तू चौराहे पर नहीं जाएगा। उसकी मां को हिदायत दे दी। यदि वह चौराहे पर गया तो इसे खाना नहीं दिया जाएगा। मां का ममतामयी हृदय पिघला और बेटे को समझाया। बेटा बात मान जा। दत्तू का उत्तर आया – **अपने देश को स्वतन्त्र कराना है, मैं आन्दोलन करूंगा, खाना नहीं खाऊंगा।**[५] दिनभर खाना नहीं खाया। मां भी भूखी रही। अपनी पसन्द की पूड़ियां बनी हुई थी। आन्दोलन तो करुंगा ही। रात को बापू ने फिर धमकाया पर बेटा न माना। मार खाई पर मुंह से एक शब्द न बोला।

मां ने बेटे को धार्मिक कार्य में लगाने की युक्ति निकाली तथा साथ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा से जोड़ दिया। जिससे इसका मन काम में लगा रहे।

मित्रता गुण भाव के धनी

बाल्यावस्था में ही तीन-चार संस्थाओं के अध्यक्ष, सचिव तथा संगठक बनना क्या साधारण काम है? यह बिना मित्रता किए कैसे सम्भव है? दत्तू के मित्रों की मण्डली अमीर-गरीब छोटे-बड़े सभी थे। उनमें से एक बकाराम था। बकाराम निर्धन गोंड आदिवासी परिवार से था। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी भाग लिया था। सांसद बनने के बाद ठेंगड़ी जी ने अपने मित्र का ध्यान रखते हुए बकाराम को स्वतन्त्रता सेनानी की पेंशन भी लगवाई और दिल्ली के दर्शन भी करवाए। बकाराम को रेलवे स्टेशन लेने के लिए स्वयं गए। सन् २००२ में ठेंगड़ी जी अपने गांव आर्वी गए। वहां उनका सम्मान किया गया। सम्मान की मिली सभी भेंट बकाराम को भेंट कर दी और कहा – शायद यह मेरी आर्वी की अन्तिम यात्रा है। ऐसा ही हुआ। सरस्वती का वास उनकी जिह्वा पर था।

दानवीरता का गुण बाल्यकाल से ही था। स्कूल में एक बार एक भाषण प्रतियोगिता हुई जिसका विषय 'शिवाजी' था। प्रथम पुरस्कार दत्तू को ही प्राप्त हुआ। उस पुरस्कार में कुछ धनराशि भी प्राप्त हुई। दत्तू सीधे अपने संघचालक जी के पास गए। वह प्राप्त धनराशि संघचालक जी को दे दी और बताया कि जब गुरु दक्षिणा होगी तब मैं आप से ले लूंगा। वह धन राशि श्रीगुरु दक्षिणा में अर्पण करनी थी।

दत्तोपन्त के पिता की अपनी वकालत के कारण प्रसिद्धि थी। घर पर किसी प्रकार की कमी न थी। मां का दुलार भी बेटे पर खूब था। पिता चाहते थे कि अपनी वकालत पूरी करने के बाद वह मेरे साथ काम को आगे बढ़ाए। यह बात स्वाभाविक ही होती है पर दत्तू यह करने वाला न था। पर मां का हृदय एक अलग ही संकेत हमें करता है। मां दत्तू को प्रचारक निकलने में बाधा नहीं बल्कि साथ देती है। **हमारा दत्तू तो आया ही राष्ट्र सेवा के लिए है।** दूसरी बात मां से आती है कि दत्तू के गुण को तो श्री गुरुजी ने ही पहचाने है।

वर्तमान में केरल में संघ कार्य पूरे देश के औसत कार्य से अधिक है। यह बात में सन् १९९० में संघ कार्य में आने के बाद सुनता रहा हूं। केरल के बारे में सुनने का दूसरा कारण साम्यवादी विचारधारा के साथ संघर्ष भी रहा है। तीसरी बात केरल के कार्य के बारे में मैंने पढ़ा और सुना है कि वहां कार्य उच्च वर्ग से न प्रारम्भ होकर सामान्य वर्ग में कार्य का विस्तार हुआ। चौथी बात हिन्दुत्व के विस्तार के संदर्भ में एक शोध पुस्तक अनट्रेचमेंट ऑफ हिन्दुत्व में हिन्दुत्व के विस्तार में बाल गोकुलम के माध्यम से संस्कार देने की पद्धति का योगदान उस पुस्तक में दिखाया गया है। स्वाभाविक है कि करेल के संघ कार्य की नींव प्रारम्भिक प्रचारकों ने योजनाबद्ध ढंग से की। बाद में उसके परिणाम उचित आने लगे। माननीय दत्तोपन्त ठेंगड़ी जी का उसमें विशेष योगदान रहा है।

केरल में संघ कार्य : गेराज से बंगले के कमरे में स्थानान्तरण

दत्तोपन्त जी केरल प्रचारक के रूप में काम करने गए। कहां रहना, क्या यह निश्चित था?

जिस वकील को ठहरने की व्यवस्था करने का काम दिया उसने अपनी गाड़ी खड़ी करने वाले गेराज में दत्तोपन्त को ठहरा दिया। वे गेराज में रहने लगे और शाखा कार्य प्रारम्भ कर दिया। ठेंगड़ी जी की अंग्रेजी भाषा पर अच्छी कमांड थी। मलयालम भी बोलने लगे थे। हिन्दी और मराठी तो आती ही थी। एक दिन उन वकील महाशय ने ठेंगड़ी जी से बात की – ''क्या तुम जीवनभर अविवाहित ब्रह्मचारी रहेंगे, रह सकेंगे? उन्होंने उत्तर दिया – **मेरे जीवन के दैनन्दिन जीवन में संघ कार्य है। मैं तब तक इस कार्य को करूंगा जब तक रह सकता हूं। यदि मैं किसी कारण से इस कार्य से दूर हो गया तो क्या होगा मैं नहीं कह सकता।** उस दिन से गेराज से बिस्तर उठाकर वकील साहब के बंगले के कमरे में आ गया।

दत्तोपन्त जब कालीकट में संघ कार्य के लिए पहुंचे तो उन्होंने समाज के जागरूक नागरिकों, वकीलों के मध्य संघ शाखा खोलने के लिए जोरदार अपील की। उस अपील के अनुसार लोगों ने उनकी विद्वता, साहस तथा संघ कार्य के प्रति समर्पण को देखा तथा प्रशंसा की। भारतीय मानस एक मजेदार मानस है। वह है दया का भाव। उन्होंने कहा – तुम्हारी बात सही है। पर यह यहां केरल में नहीं चलेगा। यहां अपनी ऊर्जा गंवाने का कोई अर्थ नहीं है। तुम वापिस नागपुर जाओ। बल्कि एक ने टिकट खरीद कर देने की भी बात की। ठेंगड़ी जी अपने काम में जुट गए। दो वर्ष १९४२ से १९४४ तक केरल में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे आगे की चुनौती इससे बड़ी थी। क्योंकि उन्हें बंगाल सहित आसाम प्रान्त का कार्य भी प्रचारक के रूप में करना था।

यहां की स्थिति अनेक कारणों से पीड़ादायक थी। बंगाली तथा गैर बंगाली, खाने-पीने, रहने तक की भयानक स्थिति थी। केरल का गेराज कम से कम खुला तो था। पर जहां कलकत्ता में रहना हो रहा था वह ऐसा बन्द कमरा था कि वे एक संक्रामक रोग हेरविस की चपेट में आ गए। जिस घर में रहते थे उस घर के लोग उन्हें एक खिड़की से खाना देते थे। क्रमशः जारी है .....

संदर्भ :

१. दत्तोपन्त ठेंगड़ी, जीवन दर्शन - खण्ड १, लेखन-सम्पादन - अमरनाथ डोगरा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, जून १९१५, विक्रमी संवत् २०१५, पृ. ३१

२. वही. पृ. ४५

३. वही, पृ. ५०

४. वही, पृ. ३१

५. वही, पृ. ५०

समन्वयक एवं निदेशक,
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान
नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

पीपलू गांव का इतिहास

डॉ. ओम दत्त सरोच

मानव सामाजिक प्राणी है अतः मानव सभ्यताओं के विकास के साथ ही परिवार अस्तित्व में आए व परिवारों के समूह ग्रामों के रूप में विकसित हुए। संस्कृत में ग्राम शब्द का मूल अर्थ समूह ही है, अतः ग्राम (गांव) शब्द परिवारों एवं कुलों की सामूहिक बस्ती का ही वाचक है। भारत वर्ष गांवों का देश है। गांवों के बसने एवं उनके नामकरण के पीछे एक इतिहास छुपा हुआ है। यूं कह लें कि प्रत्येक गांव की अपनी-अपनी ऐतिहासिकता है। गावों से जुड़ी कथा, जनश्रुति व इतिहास आदि का बोध इतिहास में शोध एवं विश्लेषण का महत्त्वपूर्ण विषय है। इतिहास बोध की इसी कड़ी में पिपलू गांव के इतिहास पर प्रकाश डाला जा रहा है।

भौगोलिक स्थिति

हिमालय पर्वत की उपत्यका (तलहट्टी) में प्रसिद्ध शिवालिक पर्वतमाला का विस्तार है, जिसे शिवालिक की पहाड़ियां भी कहा जाता है। यह शिवालिक पर्वतमाला उत्तर में पीरपंजाल पर्वत श्रृंखला, पश्चिम में पंजाब व हरियाणा तथा दक्षिणपूर्व में उत्तराखंड को छूती है। इसी शिवालिक पर्वतमाला में ऊना तथा हमीरपुर जिला की सीमा पर उत्तर से दक्षिण में सोलासिंगी धार स्थित है। उत्तर में यह धार चामुखा के पास व्यास नदी को छूती है तो दक्षिण में बाघछाल नामक स्थान पर सतलुज नदी इसे काटती है। कह सकते हैं कि व्यास और सतलुज को जोड़ने वाली सोलासिंगी धार है। इस धार के अलग-अलग उपनाम हो गए हैं। दक्षिण में बाघछाल से बच्छरेटू (जिला बिलासपुर) तक इसका नाम कोटधार, बच्छरेटू से बड़सर (जिला हमीरपुर) तक बच्छरेटू धार, बड़सर से चामुखा (जिला ऊना) तक सोलासिंगी धार तथा चामुखा (जिला ऊना) से चामुखा (जिला कांगड़ा) तक इसका नाम धार चामुखा है। इस धार का बड़ा भाग सोलासिंगी कहलाता है। अतः इसे मुख्य रूप से सोलासिंगी धार के नाम से ही जाना जाती है। सोलासिंगी नाम बड़ा सार्थक है। इस धार के सोलह ऊंच शिखर (चोटियां) है। शिखर को संस्कृत में शृंग कहा जाता है, जिसका एक अर्थ सींग भी होता है। अतः षोडष शृंगी (सोलह शिखरों वाली) शब्द ही अपभ्रंश हो कर सोलासिंगी नाम के रूप में प्रचलित हुआ है। इसी धार पर महाराजा संसार चन्द द्वारा बनाए गए प्राचीन ऐतिहासिक किले भी स्थित हैं जिन्हें सोलासिंगी के गढ़ कहा जाता है। किले के एक छोर पर सोलासिंगी सिद्ध का मन्दिर भी विराजमान है।

पिपलू गांव समुद्र तल से लगभग ४००० फुट की ऊंचाई पर सोलासिंगी धार पर प्रकृति की गोद में बसा है। यहां की जलवायु शीतोष्ण है। ऊंचाई पर होने के कारण सर्दियों में ठण्डी हवायें

चलती रहती हैं। जिससे कोहरा आदि बहुत कम पड़ता है। गर्मियों में प्रायः ठण्डी हवा चलती रहती है जिससे ज्यादा गर्मी महसूस नहीं होती है। वर्षा पर्याप्त होती है।

गांव के पश्चिम में काफी विस्तृत घना जंगल है जो कि गांव से बिल्कुल सटा हुआ है। जंगल में खैर, छल, कैहमल, परियात, बुआड़ा, बरनाह व अली (अमततास) आदि के पेड़ हैं। तो गरना, बेर, कूटी टौर व घौं आदि की धनी झाड़ियां भी है। परन्तु चड़ेल बूटी नामक झाड़ी के प्रकोप से जंगल धीरे-धीरे नष्ट होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त गांव में ब्यूल, कराल (कचनार) बेर, लसूनिया व बांस आदि के पशुचारे के लिए उपयोगी पेड़ भी पाए जाते हैं। गाय, भैंस व बकरी आदि पालतू पशुओं के अतिरिक्त जंगल में सुअर, सांभर, ककड़, शैल, खरगोश, बन्दर, मुर्गा कौआ, तोता, फनाहर, घुटारी व गौरैया आदि पशु-पक्षी भी हैं। जंगल में बेर, बुआड़ा, गरना, कांगू आदि फल व तरड़ी मूल आदि भी होते हैं।

इस सोलासिंगी धार के ही एक भाग जिसे धार चामुखा कहा जाता है, उस पर प्राचीन ऐतिहासिक गांव पिपलू है जो समुद्र तल से चार हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यह गांव हिमाचल प्रदेश के ऊना जिला की तहसील बंगाणा, तप्पा धार चामुखा में तहसील मुख्यालय से सात कि.मी. की दूरी पर बंगाणा धनेटा सड़क पर स्थित है। यह विकास खण्ड बंगाणा की ग्राम पंचायत पिपलू थाना बंगाणा के अन्तर्गत आता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजस्व रिकार्ड में गांव का नाम झगरोट है। राजस्व रिकार्ड में गांव का नाम झगरोटा है परन्तु नाम पिपलू है। पिपलू नाम प्रचलित होने के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। पिपलू नाम यहां प्राचीन सूखे पीपल के हरा होने की घटना के कारण हुआ है। पिपलू के नामकरण व प्रसिद्धि का कारण यहां प्राचीन पीपल वृक्ष व नृसिंह देव मन्दिर है। मन्दिर का इतिहास लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। पिपलू प्राचीन ऐतिहासिक नृसिंह देव मन्दिर ठाकुरद्वारा के लिए प्रसिद्ध है। वर्तमान पिपलू गांव से ठीक नीचे सड़क मार्ग से पांच कि.मी. व पैदल रास्ते से लगभग ढाई कि.मी. दूर पश्चिम में हटली नामक गांव है। इस गांव की ही एक बस्ती महेड़ कहलाती है। इस बस्ती के लोग राजपूत हैं व महेड़ बस्ती में रहने के कारण इन्हें महेडू कहा जाता है। मान्यता के अनुसार लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व इस महेड़ बस्ती में उतरू नामक किसान रहता था। उसे एक बार रात को सपने में किसी दिव्य पुरुष के दर्शन हुए। उस दिव्य पुरुष ने उतरू से कहा कि मैं भगवान विष्णु का अवतार नृसिंह रूप हूं तथा इस समय में शिला रूप में जंगल में अमुक स्थान पर झाड़ी में जमीन में दबा हूं। मुझे वहां से निकाल कर धार की चोटी पर स्थित सूखे पीपल के नीचे स्थापित करो। यह स्थान वर्तमान पिपलू ही था, जहां घने जंगल के बीच बिल्कुल सूख चुका पीपल का पेड़ था। उतरू सवेरे उठकर औजार ले कर सपने में निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचा व झाड़ियों को साफ करके खुदाई करने लगा। खुदाई करने पर उसे एक

शिला मिली। वह शिला को उठा कर अपने घर ले गया व उसे पशुशाला में रख दिया। वह शिला रखने की जगह वाली बात को भूल गया था। इससे उसकी आंखों की रोशनी चली गई। रात को सपने में दिव्यपुरुष ने पुनः उसे शिला को सूखे पीपल के नीचे रखने का निर्देश दिया। प्रातःकाल उतरू ने धार पर स्थित पीपल की ओर मुख करके क्षमा याचना की। इससे उसकी आंखे ठीक हो गई। वह शिला को सिर पर उठा कर अपने गांव के अन्य लोगों के साथ सूखे पीपल वाले स्थान पर पहुंचा तथा सूखे पीपल वृक्ष के नीचे उसने शिला को स्थापित कर दिया तथा प्रतिदिन अपने घर से आकर वहां जल चढ़ाने लगा। शिला की स्थापना करने से चमत्कार हुआ और सूखा पीपल हरा-भरा होकर लहलहराने लगा। इस घटना की चर्चा आसपास के इलाके में होने लगी। यहां लोग आने लगे व उनकी मनोकामनायें पूरी होने लगी। पीपल व शिला की मान्यता दिनों दिन बढ़ती गई। पिपलू मन्दिर के ठीक पीछे यह चमत्कारी पीपल आज भी हरा-भरा मौजूद है व असंख्य श्रद्धालुओं की आस्था का केन्द्र है। सूखा पीपल हरा होने के कारण ही यह स्थान पिपलू नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कुछ दिनों के उपरान्त उसी उतरू किसान को पुनः सपने में दैवी निर्देश हुआ कि स्थापित शिला व पीपल की नियमित एवं विधिविधान से पूजा करने के लिए बाग शीतला गांव में रहने वाले सरोच ब्राह्मण उपाध्यायों (पाधों) को यहां ले कर आओ। तदुपरान्त वह किसान गांव बाग शीतला पहुंचा। बाग शीतला गांव उस समय नादौन रियासत के अन्तर्गत था तथा वर्तमान में जिला हमीरपुर की तहसील नादौन में धनेटा के पास पिपलू से पूर्व दिशा में धार की तराई में है। उतरू ने गांव के सरोच ब्राह्मणों से सम्पर्क करके दैवी निर्देश का हवाला देते हुए पिपलू स्थित शिला व पीपल की नियमित पूजा का काम संभालने का अनुरोध किया। उतरू के अनुरोध को स्वीकार करके उन ब्राह्मणों ने पूजा की जिम्मेदारी संभाल ली। वे प्रतिदिन बाग शीलता से पिपलू आकर पूजा करके वापस चले जाते थे क्योंकि यहां घना जंगल था तथा रहने का भी कोई आश्रय नहीं था।

तत्कालीन कुटलैहड़ रियासत के राजा तक शिला व पीपल के चमत्कार की बात पहुंची तो वे भी यहां दर्शनों के लिए पहुंचे। उन्होंने यहां मन्दिर का निर्माण करवाया। मन्दिर का गर्भ गृह व गुम्बद आज भी उसी रूप में स्थित है। पुजारियों की समस्या को समझते हुए राजा ने उन्हें बसने के लिए तीन घुमाओं (२४ कनाल) व मन्दिर के लिए छः कनाल जमीन दी। पुजारियों के उस समय तीन परिवार थे, अतः राजा द्वारा दी गई एक-एक घुमाओं (८ कनाल) पर वे यहीं मकान बना कर बस गए। झगरोट गांव के मूल निवासी मुसलमान गुज्जर थे। मन्दिर के पास पुजारियों के बस जाने पर झगरोट गांव (पिपलू) की दो बस्तियां हो गई। एक जातुकर्ण गोत्र के सरोच ब्राह्मणों की बस्ती तथा दूसरी मन्दिर से लगभग ५०० मीटर दूर मुसलमानों की बस्ती। पुजारी पौरहित्य का काम करते थे, अतः उपाध्याय (पाधे) कहलाते हैं।

इसी झगरोट (पिपलू) गांव में बिसाखी नामक व्यक्ति रहता था। उसके पास बहुत जमीन थी

परन्तु वह अकेला था तथा उसका कोई वारिस नहीं था। उसकी मृत्यु के बाद उसकी जमीन सरकार के अधिकार में चली गई। कई साहूकारों का उस पर कर्ज था जिसकी भरपाई के लिए सरकार द्वारा उसकी जमीन की निलामी निर्धारित की गई। यह सन् १९३३ की बात है। उस समय इलाके का तहसीलदार एक मुसलमान था। उसने झगरोट व आसपास रहने वाले मुसलमानों को बहकाया कि यह जमीन नाममात्र की बोली पर मैं तुम्हारे नाम कर दूंगा। इस बात की भनक जब मन्दिर के पुजारियों को लगी तो वे इलाके के जाने माने सेठ कांशी राम व कृपा राम के पास गए। कांशी राम व कृपा राम सगे भाई थे तथा हटली पटियालां तहसील बंगाणा के निवासी थे। कराची (पाकिस्तान) में उनका बड़ा कारोबार था। इनमें से कांशी राम हिमाचल के प्रसिद्ध नेता एवं हमीरपुर के सांसद व कुटलैहड़ के दो बार विधायक रहे स्व. ठाकुर रणजीत सिंह के पिता थे। इन दोनों भाइयों ने पुजारियों की बात सुनकर उन्हें भरोसा दिलाया कि हमारे होते हुए आपके व मन्दिर के हितों पर कोई आंच नहीं आ सकती है। नीलामी वाले दिन पिपलू में गांव व आसपास के बहुत से मुसलमान इकट्ठे हो गए। उन्हें विश्वास था कि जमीन उन्हें ही मिलेगी। परन्तु नीलामी से ठीक पहले सेठ कांशी राम व कृपा राम उस समय प्रचलित चांदी के रूपयों की थैलियां ले कर उपस्थित हो गए। मुस्लिम पक्ष तो एक सीमा तक जमीन की बोली लगा पाया परन्तु इन दोनों भइयों ने बोली इतनी बढ़ा दी कि मुस्लिम पक्ष कुछ नहीं कर पाया। नीलामी के पैसे तुरन्त जमा करवा कर इन दोनों सेठों ने जमीन पुजारियों के नाम करवा दी। इस प्रकार इन्होंने धर्म की रक्षा के लिए अपना योगदान दिया व जमीन पुजारियों के नाम करवाकर उदारता का भी परिचय दिया।इस समय की स्थिति के अनुसार झगरोट गांव की पुश्तैनी जमीन मुसलमानों के पास व राजा द्वारा दान व नीलामी में खरीदी जमीन पर सरोच पाधे पुजारी काबिज हैं।

यह महत्त्वपूर्ण घटना जो गांव से जुड़ी हुई हैं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अति महत्त्वपूर्ण है। यह घटना १९४७ की है। भारत विभाजन के समय भड़के राष्ट्रव्यापी दंगों से यह गांव भी अछूता नहीं रहा था। झगरोट व साथ लगते बैहरड़ व चामुखा गांवों में काफी संख्या में मुसलमान रहते थे। दंगों का असर यहां पर भी हुआ। परन्तु यहां के स्थानीय लोगों ने बाहर से आए दंगाई लोगों से यहां के मुसलमानों की रक्षा की। पिपलू के ब्राह्मणों ने गांव के मुस्लिम भाइयों को दंगाइयों से बचाने के लिए अपने घरों में छुपा कर रखा था। उस समय मुसलमानों के घरों को जला दिया गया। बहुत से मुस्लिम परिवार पाकिस्तान भी चले गए। दंगे शान्त होने तक उन्होंने अपने घरों में उनकी देखभाल करके सम्प्रदायिक सौहार्द का परिचय दिया था। इसकी चर्चा आज भी गांव के बुजुर्ग मुसलमान करते हैं। दंगों के बाद यहां रह गए मुसलमानों को फिर से बसाने के लिए गांव के ब्राह्मणों ने हर तरह से सहायता की थी तथा यहां तक कि अपनी जमीन का कुछ भाग भी उनको दे दिया जो कि आज भी उन्हीं मुस्लिम परिवारों के कब्जे में है। ब्राह्मण पुजारियों की इसी सौहार्द की भावना का परिणाम है कि आज भी यहां दोनों समुदायों के लोग आपसी भाईचारे के साथ रहते हैं तथा एक दूसरे के सुख-दुख में

शामिल होते हैं। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से यह गांव एक आदर्श है। मुसलमानों के जो रिश्तेदार पाकिस्तान चले गए है, वे भी कभी-कभी अपने सम्बन्धियों से मिलने आते हैं तो ब्राह्मण परिवारों से भी आकर जरूर मिलते हैं तथा उनके द्वारा की गई नेकियों को वास्ता देते हैं।

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

गांव में हिन्दू तथा मुसलमान दो समुदाय के लोग रहते हैं। हिन्दू ब्राह्मण पुजारियों की बस्ती मन्दिर के साथ ही लगती है जबकि मुसलमानों की बस्ती मन्दिर के लगभग ५०० मी. की दूरी पर है। गांव की कुल आबादी १६५ है। गांव में लगभग ९०% आबादी साक्षर है।

गांव बोलचार की भाषा कांगड़ी बोली है। मुस्लिम समुदाय की अपनी अलग बोली है जिसे गुज्जर बोली कहा जाता है। यह चम्बा व जम्मू के गुज्जरों की भाषा गोजरी से मिलती है। मुस्लिम समुदाय आपस में इसी बोली में बातचीत करते हैं, जबकि समुदाय के बाहर के लोगों से कांगड़ी बोली में बातचीत करते हैं। इस अल्पसंख्यक समुदाय ने आज भी अपनी मातृभाषा को संरक्षित व जीवित रखा है। इसके अतिरिक्त लिखने-पढ़ने में दोनों समुदाय हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं। धार्मिक क्रिया कलापों में हिन्दू संस्कृत भाषा व मुसलमान अरबी भाषा का प्रयोग करते हैं।

कृषि व पशुपालन गांव के लोगों का मुख्य व्यवसाय है। बहुत से लोग नौकरी पेशा भी है। नौकरी पेशा में ब्राह्मण-परिवारों के ज्यादा लोग हैं। मुसलमान गुज्जरों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिलने के बाद अब इस समुदाय के लोग भी नौकरी करने लगे हैं। गांव के बहुत से लोगों ने केन्द्र सरकार व राज्य सरकार में अपनी सेवाएं दी है व वर्तमान में कार्यरत है। गांव के लोगों ने विभिन्न क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की व गांव के नाम को रोशन किया। इनमें – स्व. पं. धनी राम जी, प्रख्यात कर्मकाण्डी विद्वान एवं ज्योतिषी, स्व. कैप्टन जगदीश चन्द शर्मा, प्रथम कैप्टन रैंक प्राप्त व १९६२, १९६५ व १९७१ के युद्धों के योद्धा, कैप्टन देवराज शर्मा, सेना से कैप्टन रैंक से सेवानिवृति के उपरान्त बीस बरस तक पंचायत प्रधान, श्री सुखदेव शास्त्री, सेवानिवृत संस्कृत शिक्षक, प्रसिद्ध समाजसेवक व हिमाचल गौरक्षा समिति के प्रदेशाध्यक्ष, डॉ. सुरेश कुमार, सेवानिवृत खण्ड आयुर्वैदा चिकित्सा अधिकारी, डॉ. ओम दत सरोच, प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वान, सेवानिवृत प्राचार्य संस्कृत कॉलेज, श्री विपन कुमार, कर्मकाण्डी विद्वान एवं प्रधान ग्राम पंचायत पिपलू, स्व. दौलू खान, नामी पहलवान, जिस की पहवाली की धाक हिमाचल व पंजाब में थी, स्व. बदरूदीन, नामी पहलवान व देसी पशु वैद्य, श्री मनु शर्मा, भारतीय वायु सेना में कैप्टन, पवन कुमार, गुलामद्दीन मुख्य रूप से है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण अपने पैतृक पेशे पंडिताई को भी अपनाये हुए हैं। मुस्लिम समुदाय कृषि के साथ-साथ मुख्य रूप से पशुपालन से भी जुड़ा है। दूध व खोआ का व्यापार करके ये लोग अच्छी कमाई करते हैं। इलाके में इन्हीं के कारण पिपलू की बर्फी व खोआ मशहूर है।

गांव की मुख्य उपज मक्की व गेहूं है। कृषि पूरी तरह से वर्षा पर ही निर्भर है। इसके

अलावा अदरक, अरबी, कचालू, आलू व हल्दी आदि की खेती भी होती है। फलों में आम, केला, संतरा, नींबू व गलगल आदि प्रसिद्ध हैं।

पिपलू मेला के कारण पिपलू की प्रसिद्धि हिमाचल के साथ-साथ पंजाब, हरियाणा व दिल्ली तक है। प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी जिसे निर्जला एकादशी कहा जाता है। यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। तीन दिवसीय यह मेला सरकार द्वारा जिला स्तरीय मेला घोषित है। मेले में हिमाचल के अलावा अन्य प्रान्तों के लोग पहुंचते हैं। हटली गांव के उतरू किसान के वंशजों द्वारा झण्डा चढ़ाने व हवन के साथ मेले का शुभारम्भ होता है। गणमान्य लोगों के नेतृत्व में भव्य शोभायात्रा भी निकाली जाती है। मेले में सांस्कृतिक कार्यक्रम, पशुमण्डी, खेल प्रतियोगिताएं व कुश्ती का भी आयोजन होता है। मिठाई, मनियारी, वस्त्र, बर्तन व औजार आदि की सैंकड़ों दुकानें लगती हैं। झूले, सर्कस शो आदि लोगों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र होते हैं। जलेबी, पकौड़े व चने आदि की खूब बिक्री होती है। निर्जला एकादशी के उपलक्ष्य में ठण्डे पानी व शर्बत की छबीलें लगती है। फल, हलवा-पूरी आदि के लंगर भी लोगों द्वारा लगाए जाते हैं। मन्दिर की ओर से मेले के दौरान निरन्तर लंगर चलता रहता है। मेले के अन्तिम दिन विशाल भण्डारे का आयोजन होता है। ऊना व पंजाब आदि से नाचती गाती अनेक टोलियां मेले की रौनक बढ़ाती हैं। जोश और उत्साह के साथ शौकीन टमक बजा कर अपना शौक पूरा करते हैं। पूरी मस्ती के साथ लोग मेले का आनन्द उठाते हैं।

मेले के अवसर पर मन्दिर में लोग घी, अनाज व पैसे चढ़ाते हैं। इस समय लगभग सौ क्विंटल अनाज मन्दिर में चढ़ता है। मन्दिर में चढ़ने वाले अनाज आदि को सार्वजनिक रूप से बेच दिया जाता है व धन को मन्दिर के विकास पर ही खर्च किया जाता है।

राजस्व रिकार्ड के अनुसार मन्दिर की आय के तीन हिस्से निर्धारित हैं– एक हिस्सा नम्बरदार तप्पा मुच्छाली बतौर प्रबन्धक, एक हिस्सा मन्दिर के पुजारी, एक हिस्सा धर्मार्थ। यहां उल्लेखनीय है कि हिस्सा नम्बरदार मुच्छाली पहले हटली गांव के उतरू किसान जिसे यहां स्थापित शिला मिली थी, उसके वंशजों का था परन्तु तत्कालीन नम्बरदार तप्पा मुच्छाली ने किसी प्रकार से वह हिस्सा अपने नाम करवा लिया था। इस समय मन्दिर की आय का लगभग सारा हिस्सा मन्दिर के विकास व धर्मार्थ ही खर्च किया जाता है। पुजारी केवल नाममात्र का हिस्सा लेते हैं। मन्दिर की ओर से यहां प्रतिदिन सदाव्रत लंगर भी चलता है तथा श्रद्धालुओं के ठहरने की व्यवस्था भी है। मन्दिर की व्यवस्था इस समय पुजारी वर्ग ही संभाल रहा है।

गांव में दो संस्कृतियों एवं धर्मों हिन्दू एवं मुस्लिम समुदायों के लोग रहते हैं, अतः दोनों धर्मों व संस्कृतियों के त्यौहार मनाए जाते हैं। हिन्दुओं के सभी पर्व दीवाली, दशहरा, जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, नवरात्र व रक्षाबन्धन आदि धूम-धाम से मनाए जाते हैं। वहीं मुस्लिम समुदाय भी ईद धूमधाम से मनाता है। गांव में मुस्लिम बस्ती में मस्जिद भी बनी है, जहां प्रतिदिन नमाज अदा की

जाती है।

यह गांव ग्राम पंचायत पिपलू के अन्तर्गत आता है। गांव में सुन्दर पंचायत भवन बना है। इसके अलावा उप स्वास्थ्य केन्द्र, आंगनबाड़ी केन्द्र, पशुऔषधालय, पटवारघर व प्राथमिक विद्यालय है। मन्दिर की एक सराय भी है।

गांव में लगभग चालीस दुकानों का छोटा सा बाजार है। जहां आवश्यकता की हर वस्तु मिल जाती है। जब सड़के नहीं थी तो यह गांव मुख्य पैदल मार्गों का संगम था। यहां हटली, हथलौण, धनेटा, बाग शीलता, अलसाहन तथा चामुखा जाने वाले रास्ते मिलते थे। अब पैदल मार्ग लुप्त प्रायः है, उनका स्थान सड़कों ने ले लिया है। अब यह स्थान बंगाणा, धनेटा, भ्याम्बी तथा बड़सर जाने वाली सड़कों का चौराहा बन गया है। धीरे-धीरे यह सोलासिंगी धार पर बसे गांवों की व्यापारिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में उभर रहा है।

जानकारी के स्रोत :

१. गांव के इतिहास एवं घटनाओं सम्बन्धी जानकारी स्व. पं. धनीराम, स्व. श्रीमति चंचला देवी, स्व. श्रीमती भगवती देवी जोकि लेखक के दादा-दादी थे, उनसे तथा स्व. पहलवान दौलू खान निवासी झगरोट (पिपलू) से प्राप्त हुई है।

२. राजस्व अभिलेख महाल झगरोट (पिपलू) मौजा धार चामुखा व पंचायत अभिलेख ग्राम पंचायत पिपलू।

३. लेखक के व्यक्तिगत अनुभव व वस्तुस्थिति।

गांव पिपलू, डा. घलूं,
तह. बंगाणा, जिला ऊना (हि.प्र.)

गतिविधियां

प्यार चन्द परमार

राष्ट्रीय परिसंवाद

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर, हि.प्र. में दिनांक २३ एवं २४ नवंबर २०१९ को **'पश्चिमी हिमालय में ऋषि परंपरा'** विषय पर द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ। प्रथम दिन के उद्घाटन सत्र में हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय श्री जयराम ठाकुर जी उपस्थित हुए और अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा कि भारतीय ऋषि ही हमारी लोक परम्पराओं के जनक हैं। उनके नाम से चलने वाले गोत्र का नाम लेकर हम आज भी गौरवान्वित होते हैं। हिमाचल प्रदेश में ऋषियों के नाम से अनेक मंदिर, आश्रम, तपोस्थलियां, गुफा एवं नदियां आदि हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है यह भूमि देवताओं और ऋषियों की भूमि है। ऋषियों की इसी परंपरा को जानना और आधुनिक पीढ़ी को इससे अवगत कराने का दायित्व इस संस्थान ने उठाया है यह प्रशंसनीय है। कार्यक्रम की अध्यक्षता राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित महामहोपाध्याय प्रो. केशव शर्मा ने की। अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा कि हिमालय की संस्कृति ऋषियों की परंपरा से ओतप्रोत है। तथापि हम आज भूल रहे हैं कि ऋषियों की परंपरा ही लोक कल्याणकारी परंपरा है। इसके अनुकूल चलना हमारा परम कर्तव्य है। आज की भागमभाग की जिंदगी में ऋषियों का चिंतन हमें धैर्य देता है, धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है तथा मानवीय सभ्यता को सुरक्षित रखने में सहायक है। विशिष्ट अतिथि के रुप में उपस्थित डा. वेद प्रकाश अग्नि ने ऋषियों को आध्यात्मिक और लौकिक जीवन पद्धति में सामंजस्य स्थापित करके लोक को सुचारू रूप से चलाने वाला बताया। उन्होंने कहा कि ऋषि परम्परा का अनुकरण मानवीय जीवन के साथ समस्त प्रकृति को सुरक्षित करेगा। सारस्वत अतिथि के रुप में पधारे प्रो. कुमार रत्नम जी ने कहा कि ऋषियों के आचरण को मानव जीवन में सरलता से उतारने के लिए आधुनिक युग में ऋषियों की परंपरा पर शोध की अपेक्षा से ही इस ओर हमारी प्रवृत्ति हुई है। समाज में व्याप्त जनश्रुतियां, लोककथाएं व लोक इतिहास आदि का ऋषियों द्वारा रचित शास्त्रों के साथ संबंध स्थापित करना तथा प्राचीन परम्पराओं को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करना वर्तमान समय की आवश्यकता है।

संगोष्ठी के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए संस्थान के वैचारिक पक्ष के निदेशक डा. ओम प्रकाश शर्मा ने बताया कि ऋषियों की परम्परा में सप्तर्षियों का (गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि (शतपथ के अनुसार) विशेष स्थान है। ये सप्तर्षि खगोल के महान ज्ञाता हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनके चक्षु के समक्ष चित्र पटल की तरह दृष्ट है। वैदिक काल से ही इन

ऋषियों ने विश्व की सम्पूर्ण मानव सभ्यता को आध्यात्मिक, वैज्ञानिक और लौकिक रुप से अत्यन्त प्रभावित किया है। हिमालय ऋषियों की तपस्थली है, उनके जीवन पद्धति से यह क्षेत्र बहुत प्रभावित रहा है क्योंकि सनातन सभ्यता की चिंतन परंपरा को जीवंत रखने के लिए हिमालय के जनमानस ने ऋषियों के तीर्थस्थानों, मंदिरों, तालाबों, कन्दराओं व आश्रमों आदि को आज भी सुरक्षित रखने का स्तुत्य प्रयास किया है। हिमाचल के अनेक हिस्सों में पराशर, व्यास, शुकदेव, मनु, माण्डव्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, कपिल, भृगु, मारकण्डेय, दुर्वासा, अत्रि, धौम्य, परशुराम, शौनक, जमदग्नि, शुक्राचार्य, ऋष्यशृंग व नारद इत्यादि ऋषियों के अनेक आश्रम, स्थान, तीर्थ, मंदिर व स्मारक आदि हैं। इन ऋषियों की चिंतन परम्परा आज भी किसी न किसी रूप में लोक में गतिमान है। इस विषय पर शोधकर्ताओं के समक्ष यह चुनौती है कि लोक, इतिहास और शास्त्र का सामंजस्य कैसे प्रस्तुत करें।

संगोष्ठी के सचिव डा. कृष्णमोहन पाण्डेय ने संगोष्ठी की भूमिका में कहा कि ऋषियों की उत्पत्ति सृष्टि के प्रारम्भिक काल में ही हुई, जैसा कि ऋग्वेद का यह मन्त्र स्पष्ट रुप से कहता है- 'तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये'। वेद के मन्त्रों का साक्षात्कार करके ऋषियों ने उस ज्ञान को अग्रिम पीढ़ी तक पहुँचाकर मानव जीवन को अप्रतिम योगदान दिया है। मानवीय इतिहास के आदिम काल में सृष्टि पर रहस्य का प्राथमिक दर्शन करने वाले ऋषियों को 'ऋषयो मन्त्रदृष्टारः, ऋषिर्दर्शनात्' आदि वाक्यों से प्रस्तुत किया गया है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक ऋषि हर काल में मानव जीवन पद्धति के श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक रहे हैं। राष्ट्रीय संगोष्ठी के संयोजक डा. ओमदत्त सरोच ने अपने बीज वक्तव्य में बताया कि हमारी संपूर्ण मानव सभ्यता ऋषियों के दिशा निर्देश पर निरंतर चली आ रही है। प्रत्येक कालखण्ड में ऋषियों ने धर्म का आचरण करने तथा अधर्म का त्याग करने के लिए प्रेरित किया है। ऋषि यायावरी वृत्ति से देवों, दानवों तथा मनुष्यों को सर्वथा धर्म कार्य में लगाने के लिए प्रयासरत रहे हैं। उनके ही धार्मिक कार्यों एवं अनुष्ठानों की रक्षा के लिए ईश्वर भी अनेक बार अवतार लेते रहे हैं। लोकपरम्परा में धर्म की ध्वजा को धारण करके ऋषि देश देशांतर में भ्रमण करते रहे हैं, इसका एक बड़ा प्रमाण नैमिषारण्य की चिंतन परम्परा है। प्राचीन काल में अनेकों गुरुकुल इन्हीं ऋषियों के कुलपतित्व में चलते थे, जहां पर लौकिक और आध्यात्मिक विद्या का अध्ययन कराया जाता था।

संस्थान के निदेशक श्री चेतराम गर्ग ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि ऋषियों द्वारा प्रणीत स्मृति एवं धर्मशास्त्र ही हमारी लोक मर्यादा के वास्तविक संविधान हैं। इनसे ही हमारी समस्त भौतिक दिनचर्या चलती है। ऋषियों द्वारा प्रतिपादित संस्कार ही धर्म-अधर्म के विवेक से समाज को एक सूत्र में बांधने का कार्य कर रहे हैं। ऋषियों के लोक कल्याण की भावना से किए गए कार्यों की एक बृहद शृंखला है। ऋषि जिस प्रकार लोक जीवन में सर्वत्र व्याप्त हैं उसी प्रकार उनके द्वारा रचित साहित्य ने भी अनन्त काल से भारतीय जनमानस को धर्म के मार्ग पर चलने को निरन्तर प्रेरित किया है।

शोध संगोष्ठी में वक्ताओं और शोधकर्ताओं ने अपने शोध के आधार पर यह बताने का प्रयास किया कि ऋषि अपने ऋषित्व की रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिए तप और साधना करते थे। तप

और साधना सामान्य जीवन में कठिन है। अतः ऋषि तपोवन या अरण्य में अपना आश्रम बनाते थे। कुछ उग्र तपस्वी कंदरा या गुफा में अपनी साधना करते थे। इन साधनाओं की दृष्टि से हिमालय का ऋषियों के साथ निकट संबंध है। सृष्टि और प्रलय में हिमालय ही सबसे बड़ा साक्षी है क्योंकि यहीं मानवीय सृष्टि की आधारशिला मनु द्वारा स्थापित है और मनु का स्थान मनाली हिमाचल में ही है। हिमालय में निर्जन गुफाओं, कन्दराओं एवं एकान्त स्थलों ने ऋषियों को आदि काल से ही आकर्षित किया है। इसी कारण वैदिक काल से लेकर आज तक ऋषियों की तपस्थली यह हिमालय बना हुआ है। आज हजारों हजार साल बीतने के बाद भी ऋषियों की तपस्थली सुरक्षित है। अब ये ऋषि देवताओं की तरह पूजे जाने लगे हैं, उनके आश्रमों ने मंदिरों का रूप ले लिया, उनके तालाबों ने तीर्थ का स्वरूप धारण कर लिया। प्राचीन काल में ही ये ऋषि जिस जिस गांव में गए या रहे वहां के लोगों ने उन्हें सम्मान दिया, अनेक ने तो इन ऋषियों के नाम पर ही अपने ग्राम का नाम रख लिया। अनेक पौराणिक नाम भाषाओं के परिवर्तन के साथ बदलते गए फिर भी प्राचीन नामों से मिलते-जुलते नाम अभी तक यथावत चलते आ रहे हैं। लोकसंस्कृति, जनश्रुति और लोकाख्यानों के साथ ऋषि प्रणीत शास्त्रों तथा लोक साहित्य के अन्तर्सम्बन्धों को लोकायित करने के लिए विद्वानों की संगोष्ठी अपेक्षित है।

आधुनिक युग जब अपनी ऐतिहासिकता को जानने के लिए उत्सुक हुआ है तो ऐसे में इन ऋषियों की परम्परा को जानना और लोक के समक्ष उपस्थित करना समाज के प्रत्येक व्यक्ति का प्रमुख दायित्व बनता है। आने वाली पीढ़ियां हमारी परम्परा को ठीक से जानें, अपने गौरवमय इतिहास को पहचाने, अपने भीतर ऋषियों के आचरण को अपनाएं, सनातन धर्म की विशेषताओं से जीवन में उत्कर्ष प्राप्त करें, इस दृष्टि से ऋषियों की परम्परा पर चिंतन, मनन, शोध जैसे कार्य आवश्यक हो जाते हैं। इस द्विदिवसीय संगोष्ठी में अनेक प्रान्तों से लगभग १०० शोधार्थी उपस्थित हुए, जिन्होंने पश्चिमी हिमालय से सम्बद्ध उपर्युक्त ऋषियों के जीवन चरित का लोक, इतिहास और शास्त्रों में सम्बन्ध स्थापित कर भारतीय जीवन पद्धति को ऋषि चरित्र की ओर ले जाने का संकल्प स्वीकार किया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी — जलियांवाला बाग नरसंहार के सौ वर्ष - एक पुनरावलोकन

इतिहास विभाग, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस स्मारक राजकीय महाविद्यालय हमीरपुर, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी व भाषा एवं संस्कृति विभाग जिला हमीरपुर के संयुक्त तत्वावधान से **'जलियांवाला बाग नरसंहार के सौ वर्ष - एक पुनरावलोकन'** विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन २१ दिसम्बर, २०१९ को नेताजी सुभाष चन्द बोस स्मारक राजकीय महाविद्यालय हमीरपुर में किया गया। कार्यक्रम में प्रो. हरमहेन्द्र सिंह वेदी, कुलाधिपति, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला मुख्यातिथि रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. अमरजीत शर्मा, निदेशक, उच्चतर शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश ने की। श्रीमान् चेतराम गर्ग, निदेशक एवं समन्वयक, ठाकुर

जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर व श्री निकू राम जिला भाषा अधिकारी, विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। कार्यक्रम का शुभारम्भ मां सरस्वती की प्रतिमा के सम्मुख दीप प्रज्वलित करके किया गया। सर्वप्रथम राष्ट्रीय संगोष्ठी के संयोजक डॉ. राकेश कुमार शर्मा ने मंचासीन अतिथियों का परिचय करवाया। उन्होंने राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्देश्य के बारे में बताते हुए कहा कि १३ अप्रैल, १९१९ को जलियांवाला बाग नरसंहार को पाठ्यपुस्तकों में केवल एक घटना के रूप में पढ़ाया जाता है, जबकि यह एक बलिदानी प्रथा है इस विषय पर अवलोकन करना, इस घटना के सम्बन्धित तथ्यों व पहलुओं पर चर्चा करना है।

मुख्यातिथि प्रो. हरमेन्द्र सिंह वेदी ने जलियांवाला बाग को शाश्वत राष्ट्रभक्ति का अमर प्रतीक बताया। उन्होंने कहा कि यह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का द्योतक है। जलियांवाला बाग नरसंहार के बाद लोगों में स्वतन्त्रता प्राप्ति की ललक भारत में बड़ी तेजी से उठी और एशिया के अन्य राष्ट्रों तक पहुंची। उन्होंने बताया कि शहीद-ए-आजम भगत सिंह जलियांवाला बाग की खून से सनी हुई मिट्टी अपने घर ले गया व उसे नियमित प्रणाम करता था। वीर सावरकर, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस सहित अन्य क्रान्तिकारियो में जलियांवाला बाग त्रासदी स्वतन्त्रता आन्दोलन की चिंगारी को तेज करने की प्रेरक बनी।

कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. अमरजीत सिंह निदेशक, उच्चतर शिक्षा विभाग हिमाचल प्रदेश ने अपने उद्बोधन में कहा कि इतिहास की जानकारी सभी संकायों के विद्यार्थियों को होनी अत्यावश्यक है। उन्होंने कहा कि भारत सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शक रहा है। वेद, पुराण, उपनिषद् व ब्राह्मण ग्रन्थ सहित प्राचीन साहित्य भारत के समृद्ध ज्ञान के द्योतक हैं। भारत का इतिहास त्याग और प्रेरणा का परिचायक रहा है। उन्होंने कहा कि १८५७ ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में हमें सफलता तो नहीं मिली परन्तु उसने भारतीयों का मार्गदर्शन किया। जलियांवाला बाग नरसंहार की १९१९ की घटना ने अंग्रेजों की क्रूर मानसिकता को सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख उजागर कर दिया। इस घटना का १०० वर्षों पर पुनरावलोकन करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिसके कई नए तथ्य समाज के सम्मुख प्रस्तुत होंगे।

विशिष्ट अतिथि श्रीमान चेतराम गर्ग ने कहा कि इतिहास मात्र चर्चा का विषय नहीं है। यह एक जीवन दर्शन है तथा युवा वर्ग को स्वतन्त्रता सेनानियों के बलिदानों को हमेशा याद रखना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि स्वतन्त्रता के ७० वर्ष बाद भी हमें वहीं इतिहास पढ़ाया जा रहा है, जिसे विदेशियों ने हमें बताया। अतः नई पीढ़ी को भारत के वास्तविक इतिहास का बोध होना अत्यावश्यक है। क्योंकि भारत का एक गौरवमयी इतिहास रहा है परन्तु कई कारणों से हम उससे दूर होते गए। उन्होंने कहा कि १९१९ के जलियांवाला बाग नरसंहार को एक घटना के रूप में देखना उचित नहीं होगा।

विशिष्ट अतिथि श्री निकू राम, जिला भाषा अधिकारी ने इस मौके पर कहा कि १९१९ कि यह घटना एक साधारण घटना नहीं है, इससे भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम को नयी दिशा प्रदान

की है।

डॉ. प्रशान्त गौरव, सह आचार्य राजकीय महाविद्यालय चण्डीगढ़ ने अपने बीज वक्तव्य में कहा कि जलियावाला बाग नरसंहार भारतीय इतिहास और स्वतन्त्रता संग्राम का टर्निंग प्वांइट था जिसने भारतीयों व अंग्रेजों के बीच में स्पष्ट विभाजन रेखा खींची। उन्होंने कहा कि जनरल डायर ने १५-२० मिनट में बड़ी बेहरमी से हजारों भारतीयों को मौत के घाट उतार दिया था। परन्तु यह विडम्बना है कि आज भी हमारे पास इस नरसंहार में मारे गए लोगों की सही-सही जानकारी नहीं है।

उद्घाटन सत्र के उपरान्त तीन समानान्तर तकनीकी सत्रों में विद्वानों व शोधार्थियों ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए। इस संगोष्ठी में डॉ. कंवर चन्द्रदीप डीन एवं विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय देहरा परिसर, डॉ. राजेश कुमार, सहायक आचार्य राजकीय महाविद्यालय चण्डीगढ़, श्री जोगिन्द्र सिंह चौहान, सेवानिवृत प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय रक्कड़, डॉ. राजकुमार, सहायक आचार्य राजकीय महाविद्यालय धनेटा संदर्भ प्रवक्ता के रूप में उपस्थित रहे।

समापन सत्र में प्राचार्य डॉ. अंजू बता सहगल बतौर मुख्यातिथि उपस्थित रहीं व सत्र की अध्यक्षता श्री जोगिन्द्र सिंह चौहान ने की। कार्यक्रम में शोध संस्थान नेरी के महासचिव श्री भूमि दत शर्मा, व्यवस्थापक - इतिहास दिवाकर श्री प्यार चन्द परमार, संयुक्त सचिव डॉ. विकास शर्मा सहित कई गणमान्य व्यक्ति, शोधार्थी एवं विद्यार्थी मौजूद रहे।

विश्वपुस्तक मेले में संगोष्ठी आयोजन व हिमाचली लेखकों की पुस्तकों का लोकार्पण

दिल्ली के प्रगति मैदान में आयोजित विश्वपुस्तक मेले में हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेयी के जीवन्त व्यक्तित्व एवं अटल चिन्तन पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें हिमाचली लेखकों की पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। इसी विषय पर ५ जनवरी, २०२० को नई दिल्ली में हिमाचल भवन के सभागार में नव-उन्नयन संस्था दिल्ली विश्वविद्यालय एवं ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के संयुक्त तत्त्वावधान में हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी ने एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया। संगोष्ठी की मुख्य अतिथि डॉ. शशिवाला जी थी। कार्यक्रम की अध्यक्षता आचार्य देवेन्द्र देव ने की। मुख्यवक्ता के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के विभागाध्यक्ष प्रो. पूरन चन्द टंडन ने अटल बिहारी वाजपेयी के जीवन्त जीवन दर्शन पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में दिल्ली विश्वविद्यालय, जे.एन.यू. दिल्ली, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला और पूरे हिमाचल से पधारे लगभग ७५ लेखकों व शोधार्थियों ने भाग लिया। संगोष्ठी में ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के निदेशक श्रीमान चेतराम गर्ग, मातृवन्दना के प्रबन्धक श्रीमान् महीधर तथा बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति संस्थान के अध्यक्ष श्रीमान् सुरेन्द्रनाथ तथा आथर्ज गिल्ड के अध्यक्ष श्रीमान दीपक कुल्लवी व प्रख्यात लेखक श्रीमान् मदन हिमाचली विशेष रूप से उपस्थित रहे। अकादमी के कार्यकारी परिषद् के सदस्य डॉ. इन्द्र सिंह ठाकुर संगोष्ठी के समन्वयक थे। अकादमी के सचिव

डॉ. कर्म सिंह ने सभी अतिथि गणों व शोधार्थियों का स्वागत किया। अकादमी कार्यकारी परिषद् के सदस्य डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने अतिथि जनों व शोधार्थियों का अकादमी की ओर से धन्यवाद किया।

दिनांक ६ जनवरी, २०२० को प्रगति मैदान में आयोजित पुस्तक मेले के लेखक एवं साहित्यिक मंच पर हिमाचली लेखकों की पुस्तकों का लोकार्पण एवं काव्यपाठ का आयोजन किया गया। पुस्तक लोकार्पण के मुख्यातिथि पूर्व राज्यसभा सांसद व पांचजन्य के पूर्व सम्पादक श्रीमान तरुण विजय थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रख्यात फिल्म पटकथा लेखिका अद्वैता काला ने की। इस कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के निदेशक चेतराम गर्ग थे। उन्होंने हिमाचल के साहित्यकारों, कवियों तथा लेखकों से आग्रह किया कि मुख्यवक्ता श्री तरुण विजय तथा अद्वैता काला ने हिमाचल प्रदेश का लेखन क्षेत्र में किए गए कार्य के संदर्भ में जो सम्मान दिया है उस दिशा में आने वाले समय में हमारे लेखकों का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है जिसे हमें पूरा करना है। इस सत्र में दयानन्द शर्मा के काव्य संग्रह **आभास**, उमा ठाकुर की पुस्तक **महासुवी लोक संस्कृति**, पामेला ठाकुर का उपन्यास **नायिका**, सुमित राज वशिष्ठ की पुस्तक **लौंग बुड डेज**, डॉ. संदीप शर्मा का कथा संग्रह **माटी मुझे पुकारेगी**, डॉ. शशि पूनम की पुस्तक **फैमिनिस्टिक ट्रामा इन इण्डियन सोसायटी'** कल्पना खांगटा का काव्य संग्रह **अलर्ट सृजन**, रुपेश्वरी शर्मा की पुस्तक **नानी-दादी की लोककथाएं**, सुबोध की पुस्तक **INCEPTION**, हेमराज कौशिक की पुस्तक **क्रान्तिकारी साहित्यकार यशपाल** और डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय की पुस्तक **संगच्छध्वम्** का लोकार्पण किया गया।

समारोह का द्वितीय सत्र काव्यपाठ से सम्बन्धित रहा। इस सत्र के मुख्य अतिथि पांचजन्य के सम्पादक हितेश शंकर वशिष्ठ थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता आचार्य देवेन्द्र देव ने की। आईसीएसआर के सदस्य सचिव प्रो. कुमार रत्नम् विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। इस अवसर पर डॉ. प्रियंका वैद्य, मुनीष तन्हा, चिरानन्द, रुपेश्वरी शर्मा, दयानन्द शर्मा, हितेन्द्र शर्मा, सुमित राज वशिष्ठ, उमा ठाकुर, कल्पना खांगटा, अर्चना शर्मा, दीपक कुल्लवी, सुशान्त, कुमुद, डॉ. राकेश कुमार शर्मा, डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय, आचार्य देवेन्द्र देव एवं प्रो. पूरन चन्द टंडन जी ने अपनी-अपनी कविताओं का पाठ किया। श्रीमान् तरूण विजय ने हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी के ध्येय पथ की सराहना की और कहा कि हिमालय ऊर्जा का स्रोत है और सभी लेखक इस स्रोत से ऊर्जा ग्रहणकर अपना नव सर्जन करते हैं। अकादमी सचिव डॉ. कर्मसिंह ने उपस्थित अतिथियों का स्वागत किया। अन्त में अकादमी कार्यकारी परिषद् के सदस्य डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने अतिथियों लेखकों और कवियों का आभार व धन्यवाद प्रकट किया।

गांव व डाकघर नेरी,
तह. व जिला हमीरपुर (हि.प्र.)